योगविद्या

वर्ष 6 अंक 7
जुलाई 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : नव वर्ष दिवस 2017

अन्दर के रंगीन फोटो 1-4: गुरु पूजा

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुणः एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ 12.13॥

अर्थ–जो किसी प्राणी के प्रति द्वेष नहीं रखता, जो सबके प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखता है, जो ममता और अहंकार की भावना से मुक्त है, जो सुख और दुःख में समभाव रखता है तथा क्षमाशील है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

सच्चा भक्त सबके प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है। वह सब प्राणियों को अपने समान समझता है। वह दीन-दुखियों की तकलीफों को अपना समझकर उन्हें स्वयं अनुभव करता है और उन्हें दूर करने का प्रयास करता है।

वह प्रिय वस्तुओं से आसक्त नहीं होता और न ही अप्रिय वस्तुओं से घृणा करता है। उसकी कोई निंदा करे तो भी वह प्रभावित नहीं होता। वह धरती की तरह क्षमाशील होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर - 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद - 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 7 · जुलाई 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 भक्ति क्या है?
8 भक्ति–इस शताब्दी का विज्ञान
16 व्यावहारिक भक्ति साधना
23 गुरु तत्त्व
31 गुरु पूर्णिमा संदेश
37 ज्ञान और भक्ति
43 सत्यम् वाणी
47 पूज्य गुरुदेव की व्यावहारिक ट्रेनिंग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

भक्ति क्या है?

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

नदी के प्रवाह की भाँति प्रेम की धारा को भक्ति की संज्ञा दी जाती है। चुम्बक की ओर सुई के आकर्षण की भाँति भगवान की ओर जीव की जो तल्लीनता रहती है, उसे ही भक्ति कहते हैं।

भक्ति दो प्रकार की होती है, अपरा और परा। अपरा भक्ति निम्न स्तर की होती है। इसमें भक्ति का बीजारोपण होता है। इस स्तर पर भक्ति पूजा-पाठ तथा कर्मकाण्ड तक सीमित रहती है। भक्त के हृदय में उदारता नहीं, संकीर्णता रहती है। दूसरे देवताओं की पूजा करने वालों के प्रति उपेक्षाभाव रहता है।

परा भक्ति का क्षेत्र विशाल एवं असीम होता है। परा भक्ति का उपासक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्रेम करता है। समस्त विश्व में वह वृन्दावन का ही दर्शन

करता है। भक्त की पूजा-अर्चना मन्दिर तक ही सीमित नहीं रहती, वह सर्वत्र अपने इष्टदेव के विराट् रूप का दर्शन करता है और उसी की लीला में आनन्द लेता है। उसके हृदय में जरा भी घृणा नहीं होती, वह सबके प्रति अगाध निश्छल प्रेम-भाव रखता है।

भक्ति में प्रेम के लिए ही प्रेम होता है। भक्त को भगवान और केवल भगवान ही वांछनीय है। भक्ति में कोई भी स्वार्थपरक कामना नहीं रहती, न ही किसी प्रकार का भय रहता है। जिस प्रकार एक न्यायाधीश का पुत्र अपने पिता से भयभीत नहीं रहता, एक पत्नी के लिए उसका पति भयप्रद नहीं रहता, उसी प्रकार भक्त को भगवान से किंचित् मात्र भी भय नहीं रहता।

भगवान से कोई वरदान मत माँगो। वरदान माँगने में सच्ची भक्ति नहीं होती। वहाँ प्रतिदान की अपेक्षा होती है। उनसे तो केवल प्रेम के लिए ही प्रेम करना चाहिए। पूर्ण निष्काम और अनन्य भक्ति कीजिए। मुक्ति की भी माँग न कीजिए। मुक्ति तो भक्ति-रूपी रानी की चरण-दासी है। वह स्वयं ही आती है।

अपने इष्ट देवता का दर्शन-मात्र पर्याप्त नहीं है। आत्मज्ञान भी आवश्यक है। नामदेव को कई बार भगवान के दर्शन हुए थे, फिर भी वे पहुँचे हुए योगी नहीं थे। नामदेव मल्लिकार्जुन-मन्दिर में एक वेदान्ती, विशोबा खेसर के पास कैवल्य रहस्य जानने के लिए गये। वहाँ विशोबा खेसर विचित्रमुद्रा में ध्यानावस्था में थे। वे लेटे थे और उनके पैर शिवलिंग पर पड़े हुए थे। नामदेव ने कहा, 'पूज्य स्वामीजी, शिवलिंग पर पाँव फैलाये क्यों सोये हैं?' खेसर ने उत्तर दिया, 'कृपा कर मेरे पैर उठाकर उस स्थान पर रख दो जहाँ शिवलिंग न हो।' नामदेव उनके पैर को उठाकर जहाँ कहीं भी रखने का प्रयत्न करते, वहाँ शिवलिंग ही शिवलिंग दृष्टिगोचर होने लगते। इससे नामदेव को बड़ा विस्मय हुआ और तब उन्होंने खेसर के आगे दण्डवत् प्रणाम कर आत्मज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की। आत्मा के बारे में स्वानुभूति प्राप्त कर नामदेव पण्ढरपुर वापस आये और तब उनको परम ज्ञान प्राप्त हुआ। श्री रामकृष्ण परमहंस एक अछूत कन्या के सामने साष्टांग प्रणाम करते हुए बोले, 'हे माँ काली! मुझे तो इस कन्या में आपके ही दर्शन हो रहे हैं।'

परमेश्वर, जीवात्मा और संसार वास्तव में एक हैं। इन भ्रमपूर्ण भेदों को मिटा दीजिए। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले सारे प्रतिबन्धों को दूर कीजिए। सबमें अन्तर्निहित एकता का अनुभव कीजिए और मुक्त होइये।

गुह-निषाद नीच जाति के थे, शबरी भीलनी थी, ध्रुव और प्रह्लाद अबोध बालक थे, विदुर और सुदामा अति निर्धन थे, हनुमान बन्दर थे, जटायु पक्षी था, गजेन्द्र हाथी था, विभीषण राक्षस था, व्रज-गोपियाँ वैदिक संस्कारों में दीक्षित नहीं थीं—फिर भी पूर्ण भक्ति एवं पूर्ण समर्पण के कारण इन सबको भगवद् साक्षात्कार हो गया।

हृदय शुद्ध होने पर मन सहज ही भगवान की ओर मुड़ता है। साधक शुद्ध प्रेम, आत्म-समर्पण और उपासना के द्वारा भगवान में लीन हो जाता है। भगवद्-प्राप्ति के

सभी साधनों में भक्तिमार्ग सरलतम है। भक्तिमार्ग पूर्णतया निरापद है। ज्ञान और योग के साधकों में अपनी शक्ति और विद्वत्ता का अभिमान आ ही जाता है। पर भक्तिमार्ग के अनुयायी बड़े विनयी और विनम्र होते हैं। भक्ति के परिपक्व होने पर स्वत: ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ज्ञान क्या है? वस्त्र में सूत देखना, घड़े में मिट्टी देखना, गहने में स्वर्ण देखना, औजारों में लोहे को देखना, कुर्सी, मेज, दरवाजा आदि में लकड़ी को देखना—यही ज्ञान है। इसी प्रकार प्राणिमात्र में आत्मा या परमात्मा का दर्शन करना, अपने और सबके हृदय में भगवान की उपस्थिति का अनुभव करना—यही ज्ञान है। अनन्य भक्ति का फल ही ज्ञान है।

परा भक्ति और ज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अद्वैत ज्ञानी आदिगुरु शंकराचार्य भगवान विष्णु, शिव तथा देवी माँ के बड़े भक्त थे। श्री रामकृष्ण परमहंस माँ काली के उपासक थे। उन्होंने अपने अद्वैत गुरु, स्वामी तोतापुरी से ज्ञान प्राप्त किया था। अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मरति ही भक्ति है। यह सर्वोच्च भक्ति है। इसके अन्दर प्रेम-भक्ति, परा-भक्ति, अपरा-भक्ति आदि का समावेश हो जाता है। भक्त पूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा प्रभु-प्राप्ति करता है, जबकि वेदान्ती हृदय की विशालता द्वारा ब्रह्म का सर्वत्र दर्शन कर ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

अपने हृदय में दिव्य प्रेम की ज्योति प्रज्वलित कीजिए। प्रभु के दर्शन सहज होंगे। उनका नाम-जप और संकीर्तन कीजिए। भगवान में मन को रमने दीजिए। मौन में उनका आनन्द लीजिए। निरन्तर यह अनुभव कीजिए कि आपका शरीर भगवान का चलता-फिरता मन्दिर है; आपका कार्यालय या व्यवसाय-भवन ही मन्दिर है, वृन्दावन है; आपका चलना-फिरना, खाना-पीना, नहाना-धोना, देखना-सुनना, पढ़ना-लिखना आदि क्रियाएँ भगवान की सेवा ही हैं। ऐसे उदात्त भाव से किया गया हर कर्म उपासना ही है। कर्म ही ध्यान है। बिना फल की इच्छा के काम कीजिए। यदि आप निरन्तर एवं सतत् अभ्यास के द्वारा अपने दृष्टिकोण को इस दिशा में बदल लें और दिव्य भाव का निर्माण कर लें, तब आपका प्रत्येक काम भगवान की पूजा हो जाएगा।

इस क्षण से ही सभी प्राणियों और व्यक्तियों के साथ, चाहे वे चींटियाँ हों या कुत्ते, हाथी हों या शेर, हिन्दू हों या मुसलमान, यहूदी हों या ईसाई, एकता और अत्यन्त घनिष्ठता का अनुभव कीजिए। सभी प्राणियों में केवल रूप-रंग का अन्तर है। प्रत्येक प्राणी सगुण ब्रह्म का ही स्वरूप है। इन आवरणों के पीछे छिपे वास्तविक चैतन्य का दर्शन करें। इससे आपको आनन्द का अनुभव होगा और आप वैश्विक प्रेम का विकास करेंगे।

जो भक्त केवल मूर्ति में भगवान का दर्शन करता है, वह निम्न स्तर का भक्त है। जो भक्तों में ही भगवान का दर्शन करता है और साथ ही किसी के प्रति यह भावना भी रखता है कि 'यह आदमी बुरा है, वह भक्त नहीं है' आदि, वह मध्यम

स्तर का भक्त है, और जो सर्वत्र भगवान ही देखता है, सारे संसार को ईश्वरमय देखता है– *वासुदेव: सर्वमिति,* वह उत्तम स्तर का भक्त है।

मिठाई में जिस प्रकार मिठास सर्वव्यापी है, उसी प्रकार सारे संसार में भगवान व्याप्त हैं। ईशावास्योपनिषद् का पहला मंत्र यही कहता है– 'ईशावास्यमिदं सर्वम्', अर्थात् सब-कुछ ईश्वर का आवास है। प्रत्येक जीव-जन्तु में भगवान हैं। सभी वस्तुओं में, सभी प्रवृत्तियों में उन्हीं को पहचानिये। श्वास-प्रश्वास में, वाणी में, नेत्रों में, सबमें वे ही हैं। वे प्राणों के प्राण और आत्मा के आत्मा हैं।

श्रीराम ने एक बार हनुमान से पूछा कि वे उनके पारस्परिक संबंध के विषय में क्या सोचते हैं। इस पर हनुमान ने कहा, 'हे प्रभु, जब मैं स्वयं को शरीर समझता हूँ, तब आपका दास हूँ। जब अपने को जीव समझता हूँ, तब आपका अंश हूँ और जब मैं अपने को आत्मा समझता हूँ, तब मैं और आप एक ही हैं।'

पहुँचे हुए भक्त अपने को इष्टदेव में लीन कर देते हैं। वे अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने आराध्यदेव में डुबो देते हैं और दैवी आनन्द के सागर में गहरा गोता लगाते हैं। उन्हें सारा जगत् भगवान का ही प्रतिरूप दिखता है।

हरि जल में हैं, थल में हैं, वायु में हैं, मन में हैं, प्राण में हैं, शरीर में हैं और शरीर को सहारा देने वाली लाठी में भी वही हैं, सर्वत्र हरि-ही-हरि हैं। पवन का प्रत्येक झोंका हरि-हरि पुकारता है; पर आप उसे सुन नहीं पाते।

अपने हृदय को भगवान के चरण-कमलों की ओर दिशान्तरित कीजिये। इससे अज्ञान का आवरण हट जाएगा और आपको अनिर्वचनीय दिव्य-दृष्टि प्राप्त होगी। हे अमृत पुत्रों! आत्मा का अमर संगीत सुनो। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वस्तु की वाणी को सुनो। टिमटिमाते तारे, नीला गगन, उज्ज्वल सूर्य, हिमालय के हिमाच्छादित शिखर, मुस्कुराते पुष्प, कल-कल बहती नदियाँ, सागर की तरंगें–सभी धीमे स्वर में कहते हैं, 'प्रभु यहाँ हैं।' संसार के सब पदार्थों में व्याप्त उस ईश्वरीय रूप को पहचानिये, आपको परमानन्द की प्राप्ति होगी।

भक्ति–इस शताब्दी का विज्ञान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अचानक मुझे नयी शताब्दी की घटनाओं की झलक मिली है। इस शताब्दी में योग नेपथ्य में चला जायेगा, भक्ति की भूमिका प्रधान होगी। भक्ति यानी श्रद्धा, प्रेम, केवल विशुद्ध प्रेम। यह अवश्य घटित होगा, एक मान्यता के रूप में नहीं, बल्कि एक विज्ञान के रूप में। जैसे हमें शोध करने से आधुनिक औषधियों के बारे में पता चला है, जैसे मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क पर शोध किये और मस्तिष्क की तरंगों की जानकारी हासिल की, उसी प्रकार मीराबाई जैसे किसी भक्त पर प्रयोग और शोध करके जानने की कोशिश करेंगे कि उनके शरीर में क्या परिवर्तन होते हैं, उन परिवर्तनों को क्या नाम दिया जाये, उनके मस्तिष्क की तरंगें कैसी होती हैं। यह सब उन्हें ढूँढ़ना होगा। मीराबाई जहर का प्याला पी गई और उस पर कोई असर नहीं हुआ–क्यों और कैसे? ईसामसीह को तीन दिनों तक सूली पर लटकाये रखा, उनके शरीर में कई स्थानों पर कीलें ठोंक दी गई थीं, फिर भी वे जीवित रहे। यह कैसे हुआ?

भक्ति-मार्ग इक्कीसवीं शताब्दी का विज्ञान है, यह मुझे स्पष्ट दिखता है। पिछली शताब्दी का विज्ञान प्रौद्योगिकी था। वैज्ञानिकों ने प्रौद्योगिकी, विद्युत् आदि के सिद्धान्तों पर शोध-कार्य किये हैं और उन्होंने हमें अनेक चमत्कारी वस्तुएँ दी

हैं। इस शताब्दी में वैज्ञानिक अपनी दृष्टि भक्ति की ओर फेरेंगे और उसी प्रकार भक्ति पर अनुसन्धान करेंगे, जिस प्रकार पहले उन्होंने भौतिक पदार्थों पर किए थे। अब विज्ञान का कार्य-क्षेत्र होगा आस्था, विश्वास और भक्ति। मानव मन, व्यवहार, स्वभाव, समाज और सभ्यता पर भक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर चिंतन-मनन और अनुसंधान होगा। इसके लिए वैज्ञानिकों को कठोर परिश्रम करना पड़ेगा। तब आप अध्यात्म-विज्ञान को मात्र धर्म या आस्था नहीं कहेंगे, बल्कि जीवन-विज्ञान कहेंगे। एक बार वैज्ञानिक इस पर चिन्तन करना शुरू कर दें, तो धर्म का पुनरुद्धार हो जायेगा।

इस शताब्दी में एक नयी क्रान्ति का पदार्पण होगा। वह क्रान्ति धर्म की, भक्ति की होगी। तुम्हारे बच्चे और नाती-पोते तुमसे पूछेंगे, 'पापा, भक्ति क्या होती है, आप जानते हैं? मेरे शिक्षक कह रहे थे कि अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने खोज की है और कहता है कि भक्ति बहुत आवश्यक चीज है, जो शारीरिक, भौतिक पदार्थों को प्रभावित करती है और उसने यह भी कहा है कि उसने उपकरणों से तरंगों की जाँच की है और सब नाप-जोख करने के बाद आंकड़ों के आधार पर यह पाया है कि हमें प्रभु से उसी प्रकार प्रेम करना चाहिए, जिस प्रकार से हम अपनी पत्नी और बच्चों से प्रेम करते हैं। क्या आप भगवान से प्रेम करते हो?' तब फिर तुम कहोगे, 'इस बच्चे को क्या हो गया है, लगता है इसका भेजा फिर गया है।' तो वह बच्चा बोलेगा, 'मेरा भेजा नहीं फिरा है, मैं विज्ञान की बात बोलता हूँ।'

ईश्वर इस शताब्दी का विषय है। पिछली शताब्दी में वैज्ञानिकों के लिए विषय था 'पदार्थ'। पदार्थ पर अनुसन्धान करते-करते उन्होंने अनेक चीजें खोज निकाली हैं, जिनकी अब नकारात्मक प्रतिक्रिया हो रही है। इसलिए अब समाज में ईश्वर की चर्चा आवश्यक हो गयी है। चाहे यहूदी मार्ग से हो, ईसाई मार्ग से हो, इस्लाम के मार्ग से हो या हिन्दू मार्ग से हो, जिस रास्ते से भी हो—अब आध्यात्मिक बातों पर मन को लगाना होगा। पिछली शताब्दी में तो ईश्वर ऐसा विषय था, जिस पर लोग चर्चा नहीं कर सकते थे, लेकिन अब तुम चर्चा कर सकते हो। पर इसे व्यवस्थित रूप से, एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की तरह आना चाहिए।

मैंने अपने जीवन में कभी ईश्वर के विषय में चर्चा नहीं की है, परन्तु अब मैं इसके अतिरिक्त और किसी विषय पर बोल ही नहीं सकता। ईश्वर से अपना रिश्ता खोजो, इसे समझने की कोशिश करो और ईश्वर से प्रेम करने की कोशिश करो। इसके लिये तुम्हें अपना काम-धाम नहीं छोड़ना है। नहीं। यदि तुम किसी लड़की से प्रेम करते हो तो क्या तुम अपना काम-धाम, खाना-पीना छोड़ देते हो? नहीं, यह तो सजगता का विषय है। बस एक-दूसरे की चेतना रहती है। लड़की लड़के के विषय में सोचती रहती है और लड़का लड़की के बारे में, चाहे वे कुछ भी करते रहें। उन्हें इसी में आनन्द आता है, इसी में वे मिलन का अनुभव करते हैं।

वैज्ञानिकों की भूमिका

भक्ति की शिक्षा तुम्हारी अगली पीढ़ी के लिए आवश्यक है, क्योंकि तुम्हारी अगली पीढ़ी इस प्रकार की नहीं होगी। वे धन-दौलत, रुपये-पैसों के पीछे भागने की बजाय पूछेंगे, 'भगवान की परिभाषा क्या है', जैसे श्वेताश्वतरोपनिषद् में पूछते हैं–

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता, जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु, वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥1.1॥

'इस सृष्टि का क्या कारण है? इन सभी प्राणियों की उत्पत्ति क्यों हुई? वे कैसे जीते हैं? उनका वास कहाँ है? किसके आदेश से वे रहते हैं? उनके दुःख और सुखों को कौन नियन्त्रित करता है? किन नियमों का पालन करना है? ब्रह्म को कौन जानता है?'

वे ये सब प्रश्न पूछेंगे। यह पीढ़ी नहीं पूछ रही है। इस पीढ़ी को मात्र यह जानने में रुचि है कि 'चुनरी के पीछे क्या है।' इनके जीवन में केवल काम और अर्थ हैं, धर्म और मोक्ष नहीं। हम जो सिखाते हैं, हो सकता है वह आज जन-समुदाय के लिए प्रासंगिक न हो, मगर इसे बीस वर्षों के बाद याद करेंगे।

फिर भक्तियोग और धर्म का अभ्युत्थान होगा। राजनेता धर्म में कोई सकारात्मक और सृजनात्मक सहयोग नहीं दे सकते। केवल दो समुदायों के लोग धर्म को सकारात्मक सहयोग प्रदान कर सकते हैं। एक साधु-संन्यासी, दूसरे वैज्ञानिक, याने ऋषि-मुनि। वे जो कुछ देख चुके होते हैं, उसके परे की चीज को देखने का प्रयास करते हैं। अणु, अणु से परमाणु, परमाणु से त्रिसरेणु। इस प्रकार आगे शोध करते हैं।

प्रारम्भिक भूमि तैयार करने का काम ऐसे कई लोगों को करना होगा, जो स्वयं अपने जीवन में इस दिव्यता का अनुभव कर चुके हैं। मेरे विचार से पहला कदम वही होगा। पिछली शताब्दी में ऐसे बहुत लोग नहीं हुए हैं जो लोगों को दिव्य जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा दे सकें। बहुत-से धर्मोपदेशक हुए हैं और उन्होंने भगवद्-जीवन के विषय में बहुत उपदेश तथा प्रवचन भी दिये हैं, पर उनमें वह क्षमता नहीं थी। उपदेश देना पर्याप्त नहीं है। जब तक वह ज्ञान मेरे भीतर अनुभवात्मक रूप से प्रकट नहीं होता, तब तक दूसरों का मार्गदर्शन करना पर्याप्त फल नहीं देगा, उन्हें वास्तविक प्रेरणा नहीं दे पायेगा।

इस शताब्दी में जीवन की इस दिशा की ओर इंगित करने वाले वैज्ञानिक मानसिकता वाले लोग होंगे। यह काम वैज्ञानिकों का ही है, केवल उन्हीं को यह काम करना होगा। एक ओर भगवदनुभव-प्राप्त सन्त और दूसरी ओर वैज्ञानिक–दोनों को मिलकर यह काम करना होगा। पिछली शताब्दी की औद्योगिक क्रांति भी वैज्ञानिकों की देन थी और इस शताब्दी की भक्ति-क्रान्ति भी वैज्ञानिकों की ही देन होगी।

ऐसा समय जल्द ही आयेगा जब बिना भक्ति को दुबारा परिभाषित किये, बिना भक्ति को अपने जीवन का अंग बनाये मानव अपने कष्टों से मुक्त नहीं हो

सकेगा। पीड़ा से मुक्त होने का यही एकमात्र आधार है, क्योंकि पीड़ा सिर्फ कमर के दर्द को तो नहीं कहते। मानव-मन में असंख्य पीड़ाएँ हैं। मानवीय चेतना में बहुत-सी अनसुलझी गुत्थियाँ हैं और हर समस्या के लिए अलग-अलग हल ढूँढ़ने जाओगे तो जिन्दगी बीत जायेगी सुलझाते-सुलझाते। सभी समस्याओं का एक साथ निदान भक्ति से हो सकता है। अत: यथासम्भव प्रयास करना चाहिए। कीर्तन करो, भजन करो, साधु-सन्तों का संग करो, महान् सन्तों की जीवनियाँ पढ़ो। उनकी प्रेरणाओं को जीवन में उतारो। भक्ति को कोई मत या सम्प्रदाय नहीं बना देना। कोशिश करो, इसमें समय लगता है। यह बुद्धि-विलास की वस्तु नहीं है। यह बहुत कठिन काम है। मन, बुद्धि, तर्क, वितर्क, कुतर्क, सब का बहुत कड़ा खोल है। इसलिए भक्त को तर्क-वितर्क में नहीं पड़ना चाहिये।

महर्षि अरविंद ने अपनी एक पुस्तक में स्वयं कहा है, 'तर्क एक सहारा था, अब तर्क एक अवरोध है।' इस तार्किक बुद्धि को पार कर जाओ तो इन सबके परे निकल जाओगे। नारद भक्ति-सूत्र में भक्ति की व्याख्या की गयी है—भक्ति प्रभु के प्रति अतिशय प्रेम है। वह अमृत स्वरूपा है। उसकी उपलब्धि से मनुष्य सिद्ध, पूर्ण, अमर और तृप्त हो जाता है। उसकी प्राप्ति से मनुष्य आकांक्षा-रहित हो जाता है, न शोक करता है, न घृणा करता है, न किसी विषय-वस्तु में आनन्द लेता है, और न बहुत उत्साही होता है। उसको जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, शान्त हो जाता है, अपनी आत्मा में ही आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।

ईश्वर से सम्बन्ध

भक्ति का मतलब होता है भगवान से प्यार करना। कैसे प्यार करते हैं? जैसे अपनी मम्मी से करते हैं, जैसे अपने भैया से करते हैं और शादी के बाद जैसे अपने पति या पत्नी से करते हैं। वह ससुर वाला प्यार, साली वाला प्यार, समधी वाला प्यार नहीं। भक्ति में तीन मुख्य सम्बन्ध हैं, एक है वात्सल्यभाव, एक है स्नेहभाव और एक है माधुर्य-भाव, राधा-कृष्ण का। भक्ति का अर्थ होता है ईश्वर के साथ आपका अंतरंग सम्बन्ध। *अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्, मूकास्वादनवत्* होना चाहिए, बस, इतना ही।

जिस प्रकार माता, पिता या पत्नी से तुम्हारा सम्बन्ध होता है, वैसे ही ईश्वर से भी तुम्हारा एक सम्बन्ध है। ईश्वर से तुम्हारा जो भी सम्बन्ध है, वह भक्ति है और तुम्हें यह पता लगाना है कि वह सम्बन्ध किस प्रकार का है, वे तुम्हारे कौन लगते हैं।

मेरे लिए ईश्वर के बारे में कुछ कहने की अपेक्षा सोचना अधिक आसान है, क्योंकि ईश्वर का वर्णन नहीं हो सकता। उनका तो केवल अनुभव किया जा सकता है। किन्तु कभी-कभी उनके बारे में सुनना अच्छा लगता है। इससे प्रेरणा, उत्साह, सहायता और शक्ति मिलती है, ताकि तुम अपने जीवन के झंझावातों का मुकाबला बुलन्दी से कर सको। लेकिन ईश्वर के बारे में तुम जो कुछ सोचते या करते हो, वह तभी फलीभूत होता है, जब तुम उनके साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हो। तुम्हें स्वयं इस बात का पता लगाना होगा कि ईश्वर के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, क्योंकि यह पूर्णत: व्यक्तिगत सम्बन्ध है। ईश्वर से मेरा जो सम्बन्ध है, वह तुम्हारा सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह बिल्कुल व्यक्तिगत है, और तुम्हारा भी बिल्कुल व्यक्तिगत होना चाहिए।

इसलिए एक भक्त के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि ईश्वर उसके कौन हैं, वे एक-दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं? ईश्वर से अपने सम्बन्ध का पता लगाने में समय लगता है। आवश्यक नहीं कि एक जीवन में ही आप पता लगा लें। एक बार इस सम्बन्ध का पता लग जाए तो समझो तुम्हारी यात्रा लगभग समाप्त हो गयी। अब तुम उनके बहुत निकट आ गए हो। श्रीमद्भागवत् में आता है, 'जैसे भोजन के प्रत्येक ग्रास के साथ ही तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति—ये तीनों एक साथ हो जाते हैं, वैसे ही भगवान की शरण में आकर उनका भजन करने से तुरंत ही भगवान के प्रति प्रेम, उनके स्वरूप का अनुभव और वैराग्य, तीनों की एक साथ प्राप्ति हो जाती है।'

भगवान का आशीर्वाद प्रतिदिन गृहस्थ व्यक्ति को सबेरे बैठकर लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक निश्चित नियम का पालन करना चाहिए। कम-से-कम दो बार प्रतिदिन भगवान से सम्बन्ध जोड़ो, सुबह और शाम। सबेरे समय पर नहा-धोकर ठीक से बैठकर सम्पर्क जोड़ना चाहिए। कभी बीमार रहे, नहीं नहाये, तो कोई बात नहीं, यूँ ही बन्द कर दिया अपने को थोड़ी देर के लिए। उस समय अपने डॉक्टर, वकील, प्रधानमन्त्री, पति, पत्नी सब से पूर्णत: अलग हो जाना चाहिए। बिलकुल नंगा हो जाना चाहिए। भगवान के सामने नंगा होना पड़ता है, और उसके बाद दुनिया का काम करो। उनका भजन, उनकी शरणागति, उनकी लीला का श्रवण, उनके नाम का भजन, उनकी पूजा-अर्चना और उनके बारे में सतत् विचार। यही पहला कर्त्तव्य है।

सबसे पहले अपनी ऊर्जा का सही दिशांतरण करो। तुम्हारी जो ऊर्जा संसार की तरफ बही जा रही है, वहाँ से थोड़ा सम्बन्ध-विच्छेद करो। दिन में चौबीसों घण्टे तुम संसार का चिन्तन करते रहते हो। वहाँ से अपने मन को धीरे-धीरे भगवान की तरफ

मोड़ो। आधे घण्टे से शुरू करके देखो, फिर तीन, चार, छः, आठ करते-करते चौबीसों घण्टे भगवान का चिन्तन करो। यही तो मैं करता हूँ। और तुम क्या करते हो? चौबीसों घण्टे सांसारिक विषयों का चिन्तन, और हुआ तो डर के कारण थोड़ा बहुत भगवान को अगरबत्ती दिखा दी, गिरजाघर हो आये, या शुक्रवार को नमाज पढ़ ली, सोमवार को शिवलिंग पर जल चढ़ा दिया कि कहीं भगवान नाराज न हो जायें। तभी तो ईश्वर की कृपा नहीं उतरती है हम पर। चौबीसों घण्टे सांसारिकता के प्रति समर्पित और थोड़ा-सा ईश्वर पर, वह भी डर के मारे, उनके कोप से बचने के लिए। और उनको पूजते भी हो, तो वह भी अपने फायदे के लिए! अपने कल्याण के लिए भगवान का नाम लेना, यह कोई तरीका थोड़े ही है उपासना का।

भगवान को प्राथमिकता दो। सबसे पहले 'तू' और उसके बाद 'मैं'। उलटा नहीं। इसी प्राथमिकता के निर्धारण के अभाव के कारण मनुष्य दुःखी है। मानवता के दुःख का यही प्रमुख कारण है कि उसने अपनी प्राथमिकतायें गलत चुनी हैं। जरा सोचो तो, तुम अपने जीवन में प्राथमिकता किसको देते हो? अपनी कामना पूर्ति को, अपनी वासनाओं को, मोह को, चिन्ताओं को तुम आगे नहीं रखते हो क्या?

हम लोग वास्तव में ईश्वर के ही सगे हैं, और किसी के नहीं। मेरा सबसे निकट का सम्बन्ध ईश्वर से ही है, माँ-बाप से नहीं, किसी अन्य व्यक्ति से नहीं। मैं किसी का पुत्र नहीं, किसी का पिता नहीं, किसी का भाई नहीं। मैं केवल प्रभु का दास हूँ। मैं भगवान का किंकर हूँ। बस, जीवन में यही एक सत्य है।

भक्ति-मार्ग सभी मार्गों से उत्तम है। विशेषकर उन लोगों के लिए जो भगवान का दर्शन करना चाहते हैं, सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं। परन्तु एक बात

निश्चित है कि मेरे और भगवान के बीच कोई चीज है, जो एक बाधा के रूप में खड़ी है। चाहे आप इसे शरीर कहें, चाहे मन कहें या भावना कहें, कुछ तो है। मैंने सुन रखा है और मैं यह मानता हूँ कि भगवान मेरे प्राणों से भी अधिक समीप हैं। वे मेरी श्वास से भी अधिक निकट हैं। वे मेरे विचारों से भी अधिक नजदीक हैं। यदि ऐसा है, तो वे मुझे दिखायी क्यों नहीं देते? कहने का मतलब मैं सत्य को क्यों नहीं देख पाता, क्यों नहीं पहचान पाता?

इसका मतलब मेरी आँखों पर पट्टी बंधी हुई है, जो मुझे इस सत्य को देखने और पहचानने से रोक रही है। अब उपाय ढूँढ़ना होगा कि कैसे सम्बन्ध जोड़ा जाए। जब तक आप इस माइक्रोफोन को बिजली से नहीं जोड़ेंगे, तब तक यह कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार जब तक मैं किसी-न-किसी रूप में भगवान से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ूँगा, तो काम कैसे चलेगा?

अब यहाँ सीढ़ी-दर-सीढ़ी अर्पण करना होता है—शरीर का, मन का, भावनाओं का और अन्त में आत्मा का। आत्मा का अर्पण—इसके लिए मोक्ष की इच्छा, ईश्वर का सान्निध्य पाने की इच्छा, ईश्वर की कृपा पाने की इच्छा, ईश्वर से सम्बन्ध रखने की इच्छा को भी त्यागना होगा। मैं कुछ नहीं पाना चाहता, तुम्हें भी नहीं। तुम मेरे मालिक हो। मैं मानता हूँ। मैं खुश हूँ यह जानकर कि तुम मेरे मालिक हो। इसलिए मैं तुम्हारे बारे में दिनभर सोच सकता हूँ और मुझे तुम्हारा सान्निध्य भी मिलेगा। मगर आज, यदि तुम न भी आओ, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अपने सेवक हनुमान को भेज दो, और कहलवा दो कि मुझे क्या करना है। मैं वही करूँगा। तुम्हें मुझसे कहने की आवश्यकता नहीं, तुम अपना संदेशवाहक भेज दो। यह आत्मा मेरी नहीं, तुम्हारी है। आत्मार्पण में आध्यात्मिक जीवन जीने की मेरी कामना का सवाल नहीं उठता, मोक्ष की कामना का सवाल नहीं उठता। नहीं, पूर्ण समर्पण!

भगवान ने मुझे सब दिया और जो मुझे नहीं मिला, शायद मुझे उसकी जरूरत नहीं है। फिर जबरदस्ती क्या माँगना? भगवान ने मुझे बीवी नहीं दी। भगवान ने कहा, 'बेटे, तुझे बीवी की जरूरत नहीं।' चलो, छुट्टी। अब भगवान से कहो मुझे बीवी दो, मुझे बीवी दो, बड़ी मुश्किल हो जायेगी। पूरा विधान बदलना पड़ेगा।

जो भगवान ने मुझे नहीं दिया, वह इसलिए कि मुझे उसकी जरूरत नहीं थी। अब जब यह मुझ पर लागू होता है, तब तुम पर भी लागू होता है। अगर भगवान ने तुम्हें कुछ नहीं दिया, तो इसलिए नहीं दिया कि तुम्हें उसकी जरूरत नहीं है। मेरा एक शिष्य है, उसकी पाँच बेटियाँ हैं। हमने उससे कहा, जब भगवान को तुम्हें बेटा नहीं देना था, तो नहीं दिया। अब दोनों मियाँ-बीवी स्वतन्त्र हो गये हैं। बच्चियों की शादी कर दी, वे ससुराल चली गयीं। उनके बेटे-बेटी भी हो गये। वे आराम से योग सिखाते हैं, कभी मद्रास जाते हैं, कभी नेपाल जाते हैं, कभी सिंगापुर जाते हैं, मस्त रहते हैं। बेटा होता, तो पैर की बेड़ी बन जाता। लड़की

तो पैर की बेड़ी बनती नहीं है, मगर लड़का तो पैर की बेड़ी बन जाता है। इतने सालों के बाद वे समझे। मैंने उनसे कहा, 'देखो, जो भगवान ने तुम्हें नहीं दिया, उसकी जरूरत तुम्हें नहीं है। तो फालतू मुझसे क्यों कहते हो कि भगवान के यहाँ सिफारिश कर दो, कुछ जादू कर दो, कुछ चमत्कार कर दो।

जब तुम निराश्रय हो जाते हो, जब तुम्हारे लिए कोई आसरा नहीं बचता, जब तुम्हारा शरीर पूरी तरह थक और टूट जाता है, जब मन काम नहीं करता, तब तुम्हारी आत्मा उनसे मिलने के लिए स्वतन्त्र हो जाती है। बल्ब टूट जाता है, ऊर्जा पावर हाउस में लौट जाती है। इसीलिए इस शताब्दी में वैज्ञानिकों की मानसिक विचारधारा और उनके प्रयोग करने के तरीके अन्दर की तरफ हों, सूक्ष्म की तरफ हों, इसका उपाय हमें निकालना है। उस उपाय को निकालने का केवल एक तरीका है। आस्थाहीन, विश्वासरहित, रूढ़िवादी और भोगासक्त संस्कृति को दीक्षा देनी है। जब तक ये लोग इस रास्ते पर नहीं आयेंगे, तब तक वैज्ञानिक केवल पदार्थ पर ही प्रयोग करते रहेंगे, जो आज तक हो रहा है और जिसका परिणाम मौजूद है।

इस शताब्दी में आध्यात्मिक मार्ग में जो प्रयोग होंगे, भक्ति को आधार बनाकर होंगे। यह मुझे स्पष्ट मालूम पड़ता है, क्योंकि पाश्चात्य देशों में उनकी रुचि इस तरफ बहुत ज्यादा है। वहाँ लोगों का झुकाव भक्ति पक्ष की तरफ बहुत है। भक्तियोग वैज्ञानिकों के लिए शोध का अगला विषय हो सकता है।

उच्छिष्ट भेंट

वल्लभाचार्य जी के पास आकर किसी सम्पन्न भक्त ठाकुर ने सेवा के लिए कुछ धन अर्पित करने का आग्रह किया, आचार्य ने अनुनय स्वीकार किया और दूसरे दिन गाड़ी पर लादकर सेवा-सामग्री प्रस्तुत की गई।

मंदिर में ठाकुर जी के सम्मुख आचार्य जी विराजमान थे, वहीं स्वर्णमुद्राएँ तोली जाने लगीं। दाता चमचमाते सिक्कों को अपने हाथों तौलते जाता था, तथा आचार्य के पास रखता जा रहा था। सिक्कों की चमचमाहट निरखते हुए तथा सिक्कों की झनझनाहट को द्विगुणित करते हुए आचार्य का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। दाता अपने दान-सुख से गर्वान्वित था, जबकि आचार्य मौन, प्रसन्न वदन, कभी ठाकुर की ओर, कभी दाता की ओर तो कभी सिक्कों की ओर देख लेते थे। मंदिर सिक्कों की खनखनाहट से गूँज उठा।

थोड़ी देर बाद आचार्य ने भक्त को अपने पास बुलाया और धीरे से उसके कान में कहा, 'भक्तवर! तुम्हारा यह दान ठाकुर जी को अर्पित करने योग्य नहीं रह गया है। इसकी आवाज को दूसरे लोगों ने सुन लिया, जिस से यह जूठा हो गया। उच्छिष्ट का भोग ठाकुर जी के लिए उपयुक्त नहीं। इसे वापस ले जाओ।

व्यावहारिक भक्ति साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भक्ति योग का मुख्य भाव है कि आदमी स्वयं को पूर्णरूपेण समर्पित कर दे, अन्दर से खाली हो जाए। एक बार राधा श्रीकृष्ण से प्रश्न करती हैं, 'आप अपनी मुरली को हमेशा अपने पास रखते हैं, हमेशा उसको अपने होठों से लगाये रहते हैं। आखिर मुरली आपको इतनी पसन्द क्यों है?' कृष्ण जी कहते हैं, 'मुझे मुरली इसलिए पसन्द है कि वह अन्दर से खाली है। उससे मैं जिस स्वर को चाहूँ, निकाल सकता हूँ।' स्वयं को खाली करना, स्वयं को वासनाओं से, स्वार्थ से, जीवन के घृणित कर्मों से मुक्त करना, यही भक्ति मार्ग में साधक का प्रयास होना चाहिए।

रामचरितमानस की नवधा भक्ति

हमारे भक्ति शास्त्रों में इसके लिए अनेक प्रकार के उपाय दिए गए हैं। अपने जीवन में भक्ति को सिद्ध करने के लिए जो उपाय श्रीराम ने माता शबरी को बताये थे, वे बहुत सहज और व्यावहारिक हैं। श्रीराम कहते हैं कि सबसे पहले संगति पर ध्यान दो। अच्छी संगति रहेगी तो मन अच्छा होगा, विचार अच्छे होंगे। अच्छे विचारों से युक्त रहो ताकि किसी के प्रति कलुषता जन्म न ले, और ईश्वर में प्रेम रहे, ईश्वर में रति रहे। अभिमान का त्याग कर गुरु की शिक्षाओं को जीवन में आत्मसात् करो। मंत्र जप करो। चित्त को अपने आराध्य से जोड़ो।

नवधा भक्ति की शिक्षा प्रासंगिक शिक्षा है, जिसका हमारे दैनिक जीवन में महत्त्व है। अगर एक सूखी लकड़ी को चंदन की लकड़ी के साथ रख दो तो कुछ समय बाद उस सूखी लकड़ी में भी चंदन की सुगन्ध आ जाती है। यह संगति का परिणाम है। अगर तुम्हारे चारों तरफ अच्छे व्यक्ति और अच्छे विचार रहें, तो तुम्हारा चिन्तन, आचरण और व्यवहार भी अच्छा होगा, वही तुम्हारे जीवन की अभिव्यक्ति रहेगी। अगर तुम बुरे वातावरण में, निकृष्ट वातावरण में, संकीर्ण विचारों से युक्त होकर जीओगे तो पूरा जीवन संकीर्ण ही होगा। इसलिए कहा है कि संगति सत्पुरुषों की होनी चाहिए। जो सत्त्वगुण से युक्त है, उसे सत्पुरुष कहा जाता है। यह आवश्यक नहीं कि सत्पुरुष ज्ञानी हो या गुरु हो या मुक्त हो, वह एक सामान्य व्यक्ति हो सकता है। बस उसका सम्बन्ध अपने जीवन की सात्त्विक अभिव्यक्ति से हो, तामसिक या राजसिक से नहीं।

गीता में भक्ति साधना

व्यवहार में परिवर्तन लाना भक्ति का एक रूप है जो राम जी ने बतलाया। गीता में कृष्ण जी ने अन्य विधियाँ भी बताई हैं। जप योग बतलाते हुए कहते हैं कि वह एक विधि है जिसके द्वारा मानसिक वृत्ति को अपने आराध्य से एकाकार किया जा सकता है। श्रीकृष्ण के जप योग का तरीका साधनात्मक है। बैठकर अपनी शारीरिक इन्द्रियों को पहले शान्त करो। इसलिए एकान्त में बैठो जहाँ पर बाहर का वातावरण तुम्हारी इन्द्रियों को प्रभावित नहीं कर सकता, विचलित नहीं कर सकता, चंचल नहीं बना सकता। उसके बाद अपने मन को एकाग्र करो। अपने मन को नासिका के अग्र भाग पर या भ्रूमध्य में लगाओ, अर्थात् नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास करो या भ्रूमध्य दृष्टि का। नासिकाग्र या भ्रूमध्य में ध्यान को केन्द्रित रखते हुये श्वास का ख्याल करो और श्वास के साथ मंत्र का जप करो। कृष्ण जी का यह तरीका ध्यान सहित जप है।

दूसरा तरीका, सहज भाव से दिन में चलते-फिरते, खाते-पीते, टहलते-दौड़ते सोऽहं मंत्र, गायत्री मंत्र, ॐकार मंत्र या महामंत्र का जप हो सकता है। यह ध्यान रहित जप हुआ जो सहज है। पहला था ध्यान सहित जप जिसमें अपनी इन्द्रियों और मन को शान्त कर चित्त को आराध्य के प्रतीक पर केन्द्रित करके मंत्र का जप करते हैं। ये दो प्रकार के अभ्यास श्रीकृष्ण बतलाते हैं।

श्रीकृष्ण ने गीता में भक्ति की जो पद्धति बतलाई है वह योग शास्त्र के अनुसार बतलाई है। उन्होंने साधनात्मक पद्धति और भक्त के लक्षण बतलाए हैं। उन्होंने श्रवण, मनन, कीर्तन या भजन के बारे में स्पष्ट रूप से नहीं कहा, लेकिन सब को स्वीकार किया। उनसे जब पूछा गया–

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥12.1॥

'भगवन् बताओ कि तुम्हें साकार और निराकार रूप में पूजने वालों में कौन श्रेष्ठ है?' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि दोनों ही बराबर हैं, दोनों तरीकों से ईश्वरत्व को ही प्राप्त करोगे। चाहे तुम साकार मार्ग पर चलो या निराकार मार्ग पर, मुझे ही प्राप्त करोगे। चाहे तुम छोटा रास्ता लो या लम्बा, अन्त में लक्ष्य तो तुम्हारा वही है। लक्ष्य को प्राप्त करने वाले में कुछ योग्यताएँ और गुण होने चाहिए। गुणों का उल्लेख कृष्ण जी ने बारहवें अध्याय में किया है।

कृष्ण जी ने हर प्रकार की उपासना को स्वीकार किया है। कोई मूर्ति पूजा करता है करे, कोई भजन-कीर्तन करता है करे, जो तुम्हारी पद्धति है वह करो, लेकिन ध्यान सहित जप या ध्यान रहित जप भी निश्चित रूप से किया करो। जप में या तो तुम ॐकार करो, या गायत्री करो या महामंत्र करो या और कोई मंत्र करो जो तुम्हें गुरु से प्राप्त है।

जप मन के लिए खूँटी होती है। हमारे गुरुजी एक कहानी सुनाते थे। ऊँटों का एक कारवाँ रेगिस्तान में जा रहा था। शाम का समय हो गया, कारवाँ रुक गया। सब अपना तम्बू लगाने लगे, ऊँटों को बाँधने लगे, रात के लिए तैयारी करने लगे। लेकिन सभी ऊँटों को बाँधने पर एक ऊँट को नहीं बाँध पाए, क्योंकि खूँटी और रस्सी गुम हो गई थी। क्या किया जाए? ऊँट को नहीं बाँधें तो रात को भाग जाएगा। उस कारवाँ में एक बुजुर्ग व्यक्ति था। उसने कहा, 'रस्सी नहीं है, कोई बात नहीं। ऊँट के पास जाकर तुम अभिनय करो कि तुम उसे बाँध रहे हो।'

एक आदमी ऊँट के पास गया, अभिनय किया कि ऊँट के गले में रस्सी डाल रहा है, खींच के बैठा रहा है, जमीन खोदकर खूँटी डाल रहा है, रस्सी को खूँटी में बाँध रहा है। ऊँट चुप-चाप बैठ गया। अगले दिन यात्रा के लिए कारवाँ तैयार होता है, तम्बू उठ जाते हैं, ऊँटों पर लाद दिए जाते हैं, लेकिन एक ऊँट उठता ही नहीं है। कितने ही डण्डे मारे, कितनी ही पिटाई की, लेकिन वह ऊँट उठा ही नहीं। तब बुजुर्ग आया और बोला, 'तुमने इस ऊँट को खोला? जैसे इसे बाँधने का अभिनय किया, वैसे अब इसे खोलने का अभिनय करो।' जैसे ही ऊँट को खोलने का अभिनय पूरा होता है ऊँट तुरन्त खड़ा हो जाता है!

इसी प्रकार मंत्र और मन है। मन को एक खूँटी चाहिए टिकने के लिए और वह खूँटी मंत्र है। मंत्र करने के तीन तरीके हैं। उत्तम तरीका है मानसिक, मन में ही बोलना। मन में ही तदाकार वृत्ति का जन्म होना है, इसलिए मन में ही बोलो। अगर मानसिक जप करते-करते मन अन्तर्मुखी हो जाए और अन्तर्मुखता के कारण नींद आने लगे तब उस समय अपनी चेतना को पुन: मंत्र के साथ जोड़ने के लिए बुदबुदाना शुरू करो। होठों को हिलाओ, मंत्र को बुदबुदाओ और मंत्र के प्रति अपनी सजगता को बनाए रखो। अगर फिर भी तन्द्रा से मुक्त नहीं हो पाते हो तो मंत्र बोलना शुरू करो। मंत्र जप के ये तीन तरीके हैं—मानसिक, उपांशु और बैखरी। मानसिक—मन में बोलो, उपांशु—बुदबुदाकर बोलो, और बैखरी—मुँह से बोलो।

कृष्ण जी प्रत्याहार की शिक्षा भी देते हैं। कहते हैं कि जैसे एक कछुआ अपने अंगों को अपने कवच में समेटता है वैसे ही मनुष्य अपनी इन्द्रियों को समेटे। कछुए के दो पैर, दो हाथ, एक पूँछ और एक सिर कवच के बाहर होते हैं, जिनको वह समेटता है। गीता में कहा है कि जीव की छ: इन्द्रियाँ होती हैं– *मन:षष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*– पाँच इन्द्रियाँ और एक मन जिसे छठी इन्द्रिय माना है। ये इन्द्रियाँ कछुवे के अंगों की तरह कवच से बाहर हैं। यह कवच आत्मा का कवच है। आत्मा के कवच से पाँच इन्द्रियाँ और एक मन बाहर निकला है। इनको समेटने पर हम अपने आपमें समाहित हो जाते हैं। जब तक इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं, संसार से हमारा व्यापार होता है। जब तक तुम संसार से जुड़े हो, तुम्हारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी रहेंगी। जब तुम आँखों को बन्द करके परमात्मा का चिन्तन करोगे तब तुम्हारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाएँगी। इसको प्रत्याहार कहते हैं, अपनी इन्द्रियों को, बाह्य अभिव्यक्तियों को समेटना।

इस प्रकार साधनात्मक भक्ति योग की प्रक्रिया में कृष्ण जी ने प्रत्याहार और जप योग की शिक्षा दी है। राम जी की हुई व्यवहारात्मक पद्धति, किस प्रकार अपने जीवन में परिवर्तन को लाया जाए। श्रीमद् भागवत में भक्ति के बारे में बतलाया है– *'श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनं, अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।'* इसमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण एक वर्ग है। पादसेवन, अर्चन और वन्दन दूसरा वर्ग है। दास्य, साख्य और आत्मनिवेदन तीसरा वर्ग है। दास्य, साख्य और आत्मनिवेदन से श्रद्धा विकसित होती है। अपने आराध्य के साथ सम्बन्ध में कलुषता नहीं होती।

भक्ति का कर्मकाण्डी रूप भी संसार में देखते हैं। हर व्यक्ति अपने घर में छोटा-सा मन्दिर रखता है, अपने आराध्य का चित्र या मूर्ति रखता है, उसकी पूजा करता है, रोज एक फूल चढ़ा देता है, एक अगरबत्ती जला देता है। वह भी एक अनुशासन है, नियम है। जब तुम कर्मकाण्ड करते हो तो तुम्हारे मन को सुख मिलता है, शान्ति मिलती है। अगर कोई परेशानी है तो सान्त्वना भी मिलती है कि मैंने अपनी परेशानी भगवान के सामने रख दी है। आन्तरिक सहजता के कारण इस प्रकार की आराधना होती है और यह भी मान्य है।

स्वामी शिवानन्द का अष्टांग योग

संतों के जीवन में अलग प्रकार की भक्ति दिखलाई देती है। भक्ति का वास्तविक अर्थ आराधना नहीं, बल्कि सेवा और प्रेम है। हमारी परम्परा में सेवा और प्रेम को भक्ति माना गया है। स्वामी शिवानन्द जी का अष्टांग योग आरम्भ होता है सेवा से। पहला अंग है सेवा, दूसरा प्रेम, तीसरा उदारता, चौथा आन्तरिक शुद्धता, पाँचवें में अच्छे गुणों से युक्त होना, छठवें में सकारात्मक अभिव्यक्ति का होना, सातवें में अपने चित्त को परमेश्वर में केन्द्रित करना और आठवें में जीवन में परमेश्वर के

अस्तित्व का अनुभव करना। ये आठों भक्ति के ही अंग हैं, जिनकी शुरुआत होती है सेवा और प्रेम से। उदारता भी भक्ति का अंग है, सौ हाथ से लो, हजार हाथ से दो। जब ऐसा करने में सक्षम हो जाते हो तब तुम्हारे भाव पवित्र हो जाते हैं। तुम्हारी भावना शुद्ध हो जाती है, निर्मल हो जाती है।

हमारे गुरु स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं कि सभी योगों के अन्त में शिवानन्द योग को आत्मसात् करना है। हठयोग कर लो, राजयोग कर लो, कुण्डलिनी योग कर लो, क्रिया योग कर लो, ध्यान योग कर लो, मंत्र योग कर लो, जितने भी योग हैं, सब कर लो, लेकिन अन्त में भक्ति मार्ग का ही आश्रय लेना होगा। हमारे गुरु जी कहते हैं कि मैंने बहुत पढ़ा, बहुत खोजा, लेकिन पूर्णता का अनुभव तब हुआ जब मैंने भक्ति मार्ग का अनुसरण किया।

आत्मभाव की जागृति

आत्मभाव भक्ति का आधार है। स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं आत्मभाव को जागृत करो। जब तक तुम दूसरों के प्रति संवेदनशील नहीं होगे, तुमसे कुछ होने वाला नहीं है। तुम समाज का उत्थान करना चाहते हो लेकिन संवेदनशील तो हो नहीं। तुम संवेदनशील हो अपनी जेब के प्रति– *चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय*। जेब में सौ हैं, पर दस निकालने में तुमको दिक्कत होती है। तुममें उदारता का चिह्न ही नहीं दिखलाई देता।

आत्मभाव प्राप्त करना कठिन नहीं है, यह कर्त्तव्यपरायणता, प्रेम, उदारता और ईश्वरत्व की अनुभूति से विकसित होता है। एक उदाहरण देता हूँ। तुम्हारे घर में अगर

कोई वस्तु इधर से उधर हो जाए, तुम यह नहीं कह सकते कि मेरी जिम्मेवारी नहीं थी। तुम्हारे घर में तुम भी उतने ही जिम्मेदार हो जितने तुम्हारे माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी या भाई-बहन। तुम यह नहीं कह सकते कि इस घर में जिम्मेदारी दूसरों की है। घर में चाहे कितने ही लोग रहें, अगर कुछ हो जाए तो हर व्यक्ति जिम्मेदार है। क्यों? आत्मभाव के कारण, अपनत्व के कारण। घर से बाहर निकलते ही तुम्हारी जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। फिर चाहे कोई भी चीज इधर से उधर हो जाए, तुमको परवाह नहीं, तुम्हारे मन में उसके प्रति अपनत्व की भावना नहीं है।

हमारी दुनिया, हमारा सम्बन्ध 'हम दो और हमारे दो' से ही रहता है। उसके आगे सोच जाती ही नहीं। वही हमारा संसार है। उस सीमा के बाहर के लोगों से हमारा कोई मतलब नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं, सब अनजाने हैं। अपने से जुड़े रहने की वृत्ति को स्वार्थ वृत्ति कहा गया है। इस स्वार्थ को समाप्त करो, दूसरे लोगों से सम्बन्ध स्थापित करके। जब तुम अन्य लोगों से सम्बन्ध स्थापित करोगे तब तुम्हारी स्वार्थ वृत्ति अपने आप कम हो जायेगी।

स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं, 'जब तुम अपने दो बच्चों के लिए जूता खरीदने बाजार जाते हो, तो तीन जोड़े खरीदो। दो तुम्हारे बच्चों के लिए और तीसरा किसी अनजान बच्चे के लिए। कपड़े खरीदते हो, तीन सेट खरीदो, दो तुम्हारे बच्चों के लिए और तीसरा उस बच्चे के लिए जिसे तुम जानते तक नहीं हो। अनजान के साथ अपनत्व की भावना को जागृत कर सकते हो तो तुम्हारी चेतना का, तुम्हारी भावना का विस्तार होगा और स्वार्थ की वृत्ति अपने-आप कम होती जाएगी।'

हर व्यक्ति अपने जीवन में प्रेम और सम्मान की कामना करता है। अगर एक गरीब को भी तुम प्रेम और सम्मान दे सकते हो तो वह अपने जीवन में कभी अभाव नहीं देखेगा। भले ही उसके घर में खाने के लिए अन्न का कण न हो, लेकिन अभाव का आभास नहीं होगा, क्योंकि तुम उसको प्रेम देते हो, सम्मान देते हो। जब किसी को प्रेम और सम्मान देते हो तो याद रखना कि तुम उसके भीतर स्थित ईश्वर को वह प्रेम और सम्मान दे रहे हो। अगर तुम मानते हो कि ईश्वर सब में है, सर्वव्यापक है, तो फिर तुम्हारा यह कर्त्तव्य होता है कि उस ईश्वर को प्रसन्न रखो। जब तुम एक प्यासे को देखते हो, भूलो मत कि उसके भीतर में बैठा हुआ ईश्वर प्यासा है। जब तुम एक भूखे को देखते हो, भूलो मत कि उसके भीतर बैठा हुआ ईश्वर भूखा है। केवल पेट में भूख का अनुभव नहीं होता, बल्कि आत्मा में भी भूख का अनुभव हो रहा है। अगर कोई व्यक्ति दु:खी है तो उसके भीतर ईश्वर भी दु:खी है। मनुष्य दु:खी और ईश्वर सुखी, ऐसा नहीं हो सकता। ईश्वर मनुष्य की भावना का प्रतिबिम्ब है और मनुष्य ईश्वर की भावना का।

यही जीवन का रहस्य है, यही जीवन का सत्य है। जब दूसरों में परमतत्त्व को देख सको और उस परमतत्त्व के उत्थान और विकास के लिए दूसरों के जीवन के

अभावों को दूर कर सको तो वही सबसे बड़ी भक्ति है। वही सेवा है, वही प्रेम है और वही आत्मभाव है।

भक्ति का विषय तो बहुत ही व्यापक है। हमारे देश में भक्ति की परम्परा तो बहुत समृद्ध है। शंकराचार्य की अपनी भक्ति है, रामानुजाचार्य की अपनी भक्ति है, वल्लभाचार्य की अपनी भक्ति है, मध्वाचार्य की अपनी भक्ति है, चैतन्य महाप्रभु की अपनी भक्ति है, ज्ञानदेव की अपनी भक्ति है, सभी ने भक्ति दर्शन पर अपना मत और विचार प्रस्तुत किया है। यहाँ मैं भक्ति की एक भूमिका ही आपको बतला पाया हूँ, जिसमें पाँच प्रकार की भक्ति-विधियों का वर्णन किया है—गीता, रामायण, भागवत, स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की भक्ति की शिक्षा।

—'भक्ति साधना' से उद्धृत

गुरु तत्त्व

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

यथार्थ में गुरु कोई शरीरधारी मनुष्य नहीं, बल्कि एक मौलिक तत्त्व है जिसे गुरु तत्त्व भी कहते हैं। जिस तरह पंच तत्त्व होते हैं जिनसे आप सभी का निर्माण हुआ है, उसी तरह गुरु तत्त्व भी एक तत्त्व होता है। आपके भीतर अनेक सूक्ष्म और उच्च तत्त्व हैं, जिन्हें आप अभी नहीं जानते क्योंकि आप में उन तत्त्वों का अनुभव करने की क्षमता नहीं है। गुरु तत्त्व भी वास्तव में आपके भीतर विराजमान है।

ज्ञान की प्राप्ति

आज्ञा चक्र वह स्थान है जहाँ यह गुरु तत्त्व अभिव्यक्त होता है। यह ज्ञान के उन्मुक्त, निर्बाध प्रवाह को दर्शाता है। आपको किताबें पढ़ने की आवश्यकता नहीं, न ही किसी विश्वविद्यालय या ग्रन्थालय में जाने की जरूरत है। ज्ञान सदैव आपके चारों ओर प्रवाहित हो रहा है। अभी आप इसे आत्मसात् नहीं कर सकते, क्योंकि आप में पर्याप्त ग्रहणशीलता नहीं है। यदि आपके भीतर गुरु तत्त्व जागृत है, तो यह ज्ञान आपको स्वत: उपलब्ध हो जाएगा। तब आप काल के तीनों आयाम– भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान जान सकेंगे। आपको इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, इत्यादि की जानकारी स्वत: प्राप्त हो जाएगी, हालाँकि यह सब बहुत ही साधारण स्तर की जानकारी है।

स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द जी को केवल पाँच मिनट में क्रिया योग की शिक्षा दी। स्वामी निरंजनानन्द कभी विद्यालय नहीं गए, परन्तु यदि आप उनसे वार्त्तालाप करें तो आपको इस बात का आभास तक नहीं होगा। इसी को हम

गुरु तत्त्व कहते हैं। यह तत्त्व भौतिक नहीं है। जो भी इसे जागृत कर लेता है वह गुरु है। गुरु कोई उपाधि या प्रमाणपत्र नहीं। केवल चाहने से कोई गुरु नहीं बन जाता। नियति द्वारा नियुक्त किए जाने पर ही आप गुरु बन सकते हैं। आपके भीतर ज्ञान प्रवाहित होने लगता है क्योंकि आप भीतर से खाली हो जाते हैं। खाली होने पर ही आप उच्चतर ज्ञान के सशक्त माध्यम बन सकते हैं।

जब स्वामी सत्यानन्द जी ऋषिकेश में थे, तब वे दिनभर बैठकर वेद, उपनिषद् या गीता का पाठ नहीं किया करते थे। वे सदैव कर्मयोग में संलग्न रहते थे, जैसे हम सभी यहाँ आश्रम में रहते हैं—सफाई करना, पानी भरना, झाड़ू लगाना, अतिथियों से मिलना वगैरह। आज उन्हें वेदों-उपनिषदों का पूर्ण ज्ञान है, समस्त शास्त्र उन्हें कण्ठस्थ हैं। उनके समर्पण, निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास और गुरु-सेवा की वजह से उनमें गुरु तत्त्व जागृत हुआ और यह ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ।

शरीरधारी गुरु

गुरु तत्त्व आपके भीतर भी है, लेकिन अभी वह जागृत नहीं है। इसलिए आपके लिए अभी गुरु का शारीरिक स्वरूप भी आवश्यक है, ताकि आप प्रश्न पूछ कर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें। आप अभी उस अवस्था तक नहीं पहुँचे हैं जहाँ आप बैठे-बैठे यह पता लगा सकें कि क्या सही है और क्या गलत। आप उस मानसिक अवस्था को अभी प्राप्त नहीं किए हैं। इसलिए आपको सब कुछ गुरु के मुख से सुनना होगा। आपके मन में कई ऐसे प्रश्न उठते हैं जिनका समाधान गुरु ही कर सकते हैं।

अगर हमें गुरु से पूछने की आवश्यकता ही न पड़े, तो और भी अच्छा। उस स्तर तक पहुँचना हमारे लिए कहीं अधिक बेहतर होगा, परन्तु कई बार हम कल्पनाएँ करने लगते हैं। हमें लगता है कि गुरु ने हमें कुछ संकेत दिया है, और हम हवाई किले बनाने लग जाते हैं। इसलिए भौतिक स्तर पर एक ऐसा व्यक्ति अवश्य उपलब्ध होना चाहिए, जो इन शंकाओं और समस्याओं का समाधान कर सके।

गुरुओं की एकात्मकता

कई बार लोग हमसे कहते हैं, 'हमने स्वामी सत्यानन्द जी से दीक्षा ग्रहण की है पर अब हम उनसे न मिल सकते हैं, न ही कुछ पूछ सकते हैं। तो फिर हमारे गुरु कौन हैं, स्वामी शिवानन्द या स्वामी सत्यानन्द या स्वामी निरंजनानन्द?' इस प्रकार की भ्रान्ति निराधार है क्योंकि देखा जाए तो सभी गुरु एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। वे शारीरिक रूप से बेशक अलग दिखते हैं, परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर वे एक होते हैं। इस ऐक्य के कारण उनके बीच आध्यात्मिक ऊर्जा का सम्प्रेषण होता है, जिसे हम समझ नहीं सकते क्योंकि हमने कभी इसका अनुभव नहीं किया है। हम हर चीज को बुद्धि द्वारा ही समझते हैं। किसी चीज को तभी समझ पाते हैं जब उसे शब्दों के रूप में सुनते हें।

लेकिन जब आध्यात्मिक शक्ति का सम्प्रेषण होता है, तब शब्दों की आवश्यकता नहीं रहती। कोई चीज हमारी ओर सम्प्रेषित होती है और हम उसे स्वत: आत्मसात् कर लेते हैं। गुरु के इस सम्प्रेषण के माध्यम से हर प्रकार का ज्ञान हमें उपलब्ध हो सकता है, चाहे वह ईसा मसीह से आये, या राम, कृष्ण अथवा स्वामी सत्यानन्द से। बस हमें उस व्यक्ति पर पूरा विश्वास होना चाहिए जिसे हमने अपना गुरु मान लिया है।

संशय का त्याग

अगर विश्वास के बजाय हमारे अन्दर संशय है तो बेहतर होगा कि हम गुरु न ही बनायें। एक बार आपने किसी व्यक्ति को गुरु मान लिया तो वहाँ संशय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। गुरु एक पवित्र, अलौकिक तत्त्व है। वे मात्र एक शिक्षक नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने चेतना की उच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया है, जिससे वे आपके विषय में बहुत कुछ जान लेते हैं। गुरु के समक्ष जाना और उनसे कुछ पूछना आपकी अपनी आवश्यकता है। आप क्या सोच रहे हैं, इसे जानने में गुरु को कोई दिलचस्पी नहीं। अगर वे चाहें तो क्षणभर में जान सकते हैं। मान लीजिए कि आप लंदन, फ्रांस या इटली में कहीं हैं और किसी तकलीफ में हैं। आप अपने गुरु को याद कर रहे हैं, उनसे हार्दिक प्रार्थना कर रहे हैं। निश्चित रूप से गुरु आपकी प्रार्थना सुनेंगे। लेकिन आपको सदैव इस कथन पर संशय होगा और यही आपकी सबसे बड़ी समस्या है। यदि वे आपकी प्रार्थना नहीं सुन सकते तो वे कदापि गुरु नहीं हो सकते। जिस क्षण आप 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हैं, आपको यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे सब कुछ जानते हैं। इस जानकारी का माध्यम उनकी स्थूल चेतना नहीं बल्कि चेतना की वह उच्च अवस्था होती है, जो सब कुछ स्वयमेव समझ लेती है।

श्री स्वामीजी अक्सर कहा करते थे, 'मेरा आशीर्वाद चाहते हो तो मेरे पास अपनी परेशानियाँ मत लाया करो।' सांसारिक चेतना से नहीं, बल्कि चेतना की उच्च अवस्था से ही गुरुजन आशीर्वाद दिया करते हैं। अपने चेतन मन से वे भले ही यह न जानें कि आप क्या सोच रहे हैं, लेकिन उनकी उच्च चेतना सब कुछ जान-समझ रही है।

दीक्षा का महत्त्व

जब आप अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करते हैं तब आपको सही दिशा का निर्धारण करना पड़ता है। आपकी चेतना को सही दिशा मिले, यही दीक्षा का प्रयोजन होता है। जब आप ध्यान के लिए मन को एकाग्र करते हैं, तब आपको अपने भीतर क्या दिखाई देता है? अंधकार के अलावा कुछ भी नहीं। हो सकता है यदा-कदा आपको कोई विचार या दृश्य भी दिखाई देता हो। ऐसी स्थिति में आप अपनी चेतना को किस दिशा में ले जाएँगे? दीक्षा आपको केवल सही मार्ग ही नहीं दिखाती, उस मार्ग पर चलने की शक्ति भी प्रदान करती है।

जिस तरह जन्म, विवाह आदि के अवसर पर आप एक परम्परा का पालन करते हैं, उसी तरह दीक्षा की एक परम्परा, एक औपचारिक विधि होती है, जिसके द्वारा आपके भीतर समर्पण और प्रतिबद्धता की भावना जागती है। मंत्र तो बहुत होते हैं, आप चाहें तो औपचारिक दीक्षा की परवाह किये बगैर स्वयं अपने लिए एक मंत्र चुन लें। लेकिन इससे आप को वह प्रभाव और लाभ नहीं मिलेगा जो दीक्षा के संस्कार से प्राप्त होगा। दीक्षा संस्कार आपको एक दिशा, एक ऊर्जा प्रदान करता है जो आपके व्यक्तित्व के पूर्णतया अनुकूल होती है।

दीक्षा के माध्यम से गुरु आपके भीतर ऊर्जा सम्प्रेषित करते हैं। जब आप साधना करते हैं तब यह ऊर्जा आपकी सहायता करती है। एक शिष्य और साधक होने के नाते आपका यह फर्ज बनता है कि आप इस ऊर्जा का संरक्षण करें, इसे विलुप्त न होने दें। जैसे-जैसे आप अपनी आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त होते जाएँगे, वैसे-वैसे इस ऊर्जा में वृद्धि होती जाएगी। लेकिन अगर आप लापरवाह रहते हैं तो आप इसे खो देंगे। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो दीक्षा तो ले लेते हैं, लेकिन निर्दिष्ट साधना के प्रति लापरवाह होने के कारण गुरु द्वारा सम्प्रेषित ऊर्जा को खो देते हैं।

मंत्र

आध्यात्मिक जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण दीक्षा मंत्र की होती है। यदि आपके पास मंत्र है तो आपको अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। आध्यात्मिक जीवन में मंत्र एक अनिवार्यता है। यदि आपके पास यह है तो ऐसा मानिए कि चेतना के विकास के लिए आपके पास सारी आवश्यक सामग्री है।

मंत्र चेतना को गति प्रदान करता है। इस समय आपकी चेतना आपके घर, परिवार, समाज, काम-काज और विषय-भोगों में ही अटकी हुई है। जब आप अपनी चेतना को इस निम्न स्तर से उठाना चाहते हैं तब आपको मंत्र दिया जाता है जो आपकी चेतना को गर्त से निकालकर ऊर्ध्वगामी गति प्रदान करता है, ताकि आप सांसारिक अनुभवों के साथ-साथ एक नये आयाम के अनुभव भी प्राप्त कर सकें। यही दीक्षा का वास्तविक प्रयोजन है।

–जुलाई 2009, इंग्लैण्ड

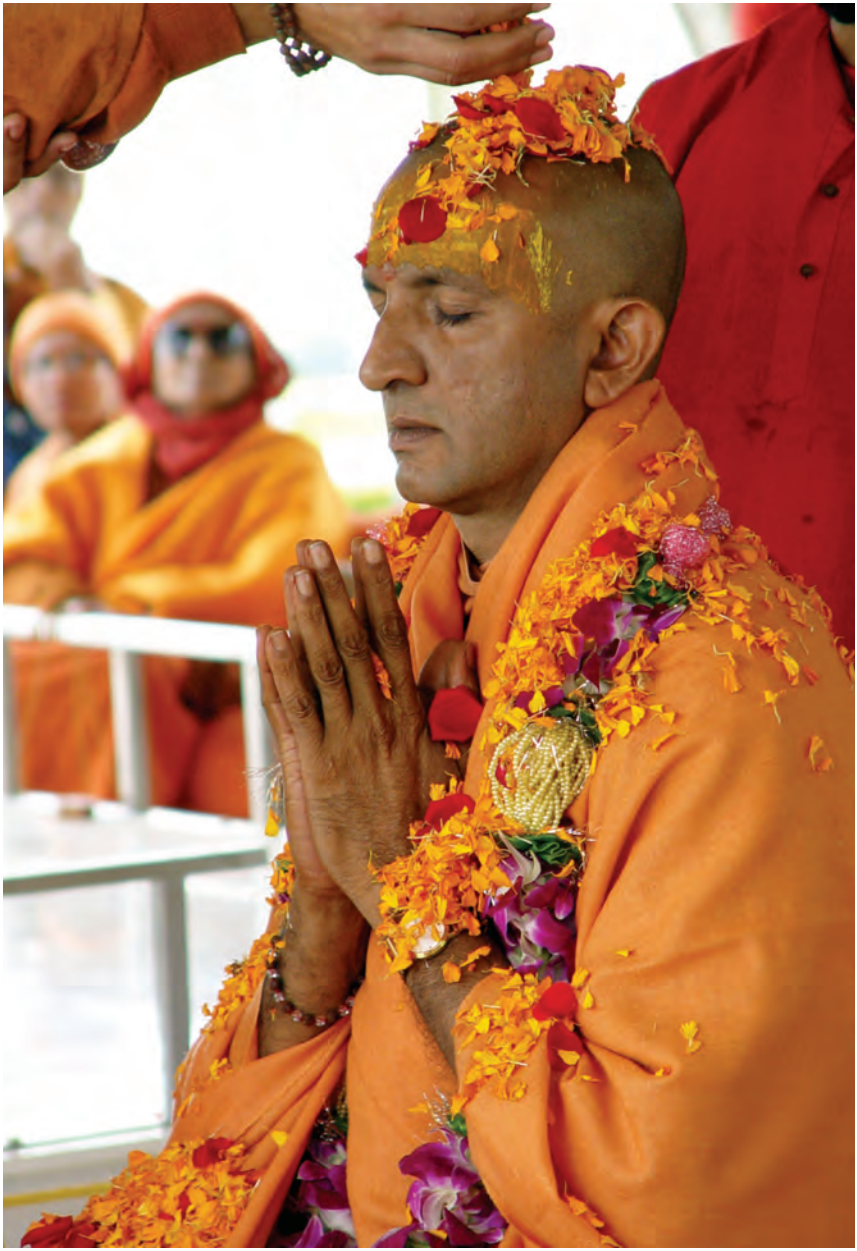

गुरु पूर्णिमा संदेश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज गुरु पूर्णिमा का पवित्र महोत्सव है। सभी प्रेम और श्रद्धा के अलौकिक समुद्र में डुबकियाँ ले-लेकर अपनी सुध-बुध खोते जा रहे हैं। सबका दिमाग आज बेकाबू है। यह भक्तियोग नहीं है क्या? यह राजयोग नहीं है क्या? यह कुण्डलिनी योग नहीं है क्या? तब यह कौन-सा योग है? योग का कर्मयोग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, लययोग और ज्ञानयोग में जो वर्गीकरण है, वह तो हम लोग किताबों में करते हैं, समझने के लिए और लिखने के लिए, मगर ये सब शाखाएँ एक ही जगह पर एक ही साथ चलती हैं। साधना की सभी प्रक्रियाएँ एक ही चीज को सम्बोधित करती हैं।

यहाँ योग पर बात हो रही है, जप और ध्यान पर बात हो रही है, रामायण पर बात हो रही है, श्रीमद्भागवत पर बात हो रही है—लोगों का दिमाग एकदम बेकाबू है, केवल हृदय खुला हुआ है। ऐसा लगता है कि सब लोग अपने दिमाग को घर में बन्द करके आ गये हैं, केवल हृदय पसारा हुआ है। अगर ऐसी भावपूर्ण स्थिति पाँच-दस दिन और चलती रहेगी, अगर ऐसा उत्सव पन्द्रह-बीस दिन तक और चलता रहेगा तो कितने लोगों को तो ध्यान अपने आप लग जायेगा। अब उसको कौन-सा योग कहोगे, बताओ तो?

शरीर के पीछे मन है, मन से सूक्ष्म बुद्धि है, बुद्धि से सूक्ष्म जीव है, जीव से सूक्ष्म अहंकार है और अहंकार से भी सूक्ष्म आत्मा है। उसके बारे में सुनते हैं, बोलते हैं, सब समझ में आता है, मगर कुछ दिखता नहीं। रामायण, गीता और श्रीमद्भागवत जैसे महान् सद्ग्रन्थों को पढ़ने के बाद, कभी महात्माओं के पास बैठकर वेदान्त के बारे में सुनकर सब समझ में आ जाता है कि पाँच तत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है, मगर जिस वक्त अनुभूति की बात आती है तो वह सब बौद्धिक ज्ञान फेल हो जाता है। क्यों? जिस चीज को तुम देखना चाहते हो वह तुम्हारे सामने है, मगर तुम्हारे पास उसे देखने का सूक्ष्म उपकरण नहीं है। जिसको तुम पाना चाहते हो, वह कोई दूर की चीज नहीं है। कहते हैं कि दुनिया में सबसे नजदीक तुम्हारे पास जो है वह 'तुम' हो। तुम्हारे और उसके बीच में कोई दूरी है ही नहीं। मगर सवाल उठता है अनुभव करने का और इस अनुभव को साकार करने के लिए हम लोग इस स्थूल मन को सूक्ष्म बनाते हैं। सूक्ष्म मन को अति सूक्ष्म बनाते हैं और बाद में उस अति सूक्ष्म मन को भी हटा देते हैं। उस मन के बदले एक दूसरे देखने वाले को ले आते हैं। यह बतला देता हूँ कि ज्ञान केवल मन, बुद्धि या भावना से ही नहीं होता। अगर उसको हटा भी दोगे तो हमारे अन्दर एक और चीज है, जिसके द्वारा सारी दुनिया को देखा जा सकता है, दुनिया का काम किया जा

सकता है, दुनिया के मजे लिये जा सकते हैं। जब हम उस अदृश्य शक्ति का जागरण करते हैं तो जैसे-जैसे हमारा आन्तरिक चश्मा साफ होता जाता है, वैसे-वैसे वह वस्तु हमें स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

कभी-कभी हम यह सोचते हैं कि इस पर्व का नाम गुरु पूर्णिमा के बदले शिष्य पूर्णिमा रखा जाता तो ज्यादा अच्छा रहता, क्योंकि गुरु की पूर्णिमा तो हो ही चुकी है। अगर पूर्णिमा नहीं हुई होती तो गुरु नहीं बनते। जिनका चित्त अंधकारमय है, जिनके मन में मलिनता है, जो अविद्या से ग्रस्त हैं, वे गुरु हो ही नहीं सकते—यह पक्की बात है। जिसका अन्दर-बाहर प्रकाश से परिपूर्ण है, ज्योत्स्नामय है, जिसके अन्दर आत्मज्ञान का प्रकाश चारों दिशाओं में फैला हुआ है, उसको कहते हैं गुरु।

तुम लोगों को यद्यपि जीवन का अन्तिम सार तत्त्व आज दिखाई नहीं देता, यह मैं मानता हूँ, किन्तु सब कुछ होने पर भी तुम्हें आज अपने अन्दर एक प्रकाश का अनुभव हो रहा है। अब इसे गुरु पूर्णिमा कहोगे कि शिष्य पूर्णिमा?

आज के दिन से हर-एक व्यक्ति को, चाहे स्त्री हो या पुरुष, चाहे बड़े घर का हो या छोटे घर का, हिन्दू हो या मुसलमान, सदाचारी, कामी, क्रोधी, व्यभिचारी, जो भी हो; उसे अपनी दिनचर्या से एक घण्टा एकदम अलग कर देना चाहिये। मान लो दिन में तेइस घण्टे होते हैं, चौबीस नहीं। इस एक घण्टे में आसन लगाओ, प्राणायाम करो और प्राणायाम के बाद श्वास में मंत्र को जपो। फिर श्वास का अनुभव सुषुम्ना में करो, ऊपर-नीचे और उसमें अपने मंत्र को जपो। उसके बाद भ्रूमध्य में मन को टिकाओ, जहाँ तुम लोग टीका लगाते हो। इसको भूलना नहीं, रोज करना।

अगर भ्रूमध्य पर ध्यान करोगे तो एक छोटा-सा तिल जैसा बिन्दु दिखलाई पड़ता है। इसके लिए कल्पना करने की जरूरत नहीं है, वह दिखाई देगा। जोर से आँखें बन्द नहीं करना। आराम से बन्द करना। मन भागता है, भागने दो। बाहर रेडियो की, बर्तन की या चिल्लाने की आवाज आती है, आने दो। केवल अपनी सुरति को भ्रूमध्य में लगाये रखो, वहाँ बिन्दु को देखो। यह बिन्दु सारी सृष्टि का आधार है, सारी माया का आधार है, सारे नाटक का आधार है जो बाह्य और अन्तर जगत् में चल रहा है। इस बिन्दु को पकड़ने के बाद गहरे ध्यान में चले जाओगे। एक घण्टा केवल इस आध्यात्मिक साधना के लिए दो, अन्यथा तुम्हारी वही हालत होगी जो आज यूरोप और अमेरिका की हो रही है। भारत के गौरव को भूलो नहीं।

ध्यान के अनेक उपाय हैं, केवल एक नहीं। हर एक व्यक्ति को अपने-अपने अनुसार ध्यान का रास्ता चुनना चाहिये। उसमें जो सरल उपाय है वह है मंत्र-जप। यद्यपि मंत्र का जप तुम्हें धीरे-धीरे आगे ले जायेगा, किन्तु निश्चित गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ोगे। सभी को मंत्र का जप, उसका अनुष्ठान और उसकी विशेष क्रियाएँ करनी चाहिये। करते जाओगे तो बहुत तरक्की होगी।

मैं तो अभी भी ध्यान करा सकता हूँ। तुम लोगों को बहुत आगे छलांग भी लगवा सकता हूँ, मगर मुझे डर लगता है, क्योंकि तुमने तैयारी तो कुछ की नहीं है। रोज निन्यानवे के चक्कर में पड़े रहते हो। कोई साड़ी खोज रहा है, कोई चूड़ी खोज रहा है, कोई बेटी खोज रहा है, तो कोई बीबी खोज रहा है। इस स्थिति में अगर तुम लोगों को आगे बढ़ायेंगे तो बावले हो जाओगे। मैं एक हाथ मारूँ तो सबको सुला सकता हूँ। आखिर गुरुजी ने मुझे कुछ दिया है, खाली मुफ्त में थोड़े ही साधु बने हैं। समझ गये न?

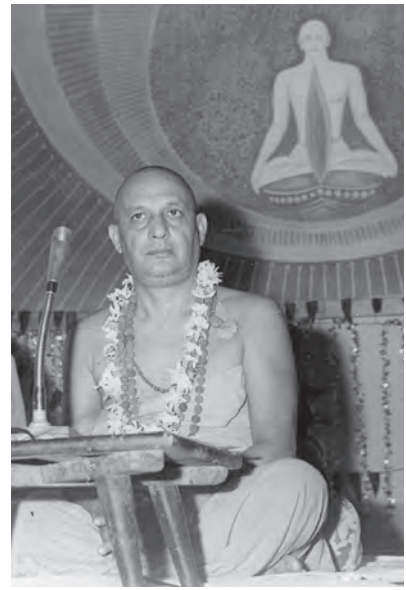

एक आदमी दुनिया में किसी को एक दिन ठग सकता है, एक साल ठग सकता है, मगर पचास साल से दुनिया को क्या मैं ठग रहा हूँ, बतलाओ? सोचो तो सही। गुरुजी के पास सामर्थ्य है या नहीं, यह पूछने के बदले पूछो कि चेले के पास गुरु के आशीर्वाद को धारण करने के लिए पात्रता है या नहीं। गरम पानी डाल दूँगा तो कच्चा गिलास फूट जायेगा, हरि ॐ तत्सत् हो जायेगा।

केवल गुरु समर्थ हो, काफी नहीं। शिष्य को भी समर्थ होना पड़ता है। गुरु

और शिष्य, ये दोनों अलग-अलग विशेषताएँ हैं। कुछ पैदा होते ही गुरु बनकर आते हैं और कुछ पैदा होते ही चेला बनकर आते हैं। चेले का गुरु में प्रमोशन हो नहीं सकता। बहुत से लोग दस-बारह साल के बाद बोलते हैं—अब बहुत दिन हो गये चेला रहते हुए, अब गुरु में थोड़ा प्रमोशन हो जाना चाहिये। अरे भाई, गुरु चेले से बढ़कर नहीं है। शिष्य की स्वयं अपनी एक हस्ती होती है और वह शिष्य रहते हुए भी सारी दुनिया को मार्ग और प्रकाश दे सकता है। हमारे गुरु स्वामी शिवानन्द जी थे और हमने हमेशा उनके सामने और पीछे यही सोचा और आज भी सोचते हैं कि हमारा शिष्यत्व ही हमारी गुरुता है, हमें गुरु बनना ही नहीं है। तुम भले ही हमें गुरु मानो, किन्तु हम तो चेला रहे। हमारे लिये उतना ही ठीक है। जब हम शिष्य बनते हैं तब हमारे अन्दर एक प्रकार की अहंकारहीनता का बोध होता है और उस समय अपने अन्दर एक प्रकाश का जन्म होता है। लेकिन जब शिष्य अपने को गुरुजी मानने लगते हैं तो उनके अन्दर अहंकार का जन्म होता है। जिस समय शिष्य के अन्दर गुरुत्व का बोध आया और अहंकार का जन्म हुआ, वे गुरु तो खैर होंगे ही नहीं, चेला भी नहीं रह पायेंगे। वे गुरुपन से तो गये ही और चेलापन से भी चले गये।

शिष्यत्व स्वयं में एक महान् गरिमामय स्थिति है। शिष्य नित्य-निरन्तर अपने अन्दर अपने गुरु की छवि को ठीक उसी प्रकार देख सकता है, जैसे सामने गुरु खड़े हों। इस सम्बन्ध में एक छोटा-सा व्यक्तिगत अनुभव सुनाता हूँ। मेरे साथ कई बार ऐसा होता है कि मुझे एकान्त मिलता ही नहीं। मेरे चारों ओर मेरे संन्यासी और भक्त लोग भूत-प्रेत और पिशाच के सदृश लगे रहते हैं। मगर कभी-कभी जब मुझे एकान्त मिलता है, बाथरूम में ही सही, और मैं वहाँ एक-डेढ़ घण्टा बैठ जाता हूँ तो थोड़ी देर के बाद मैं अपने-आप में एकदम गायब हो जाता हूँ।

यह अवस्था हमेशा नहीं होती, कभी-कभी होती है। ऐसे समय मेरे गुरु मेरे सामने उसी प्रकार स्पष्ट मालूम पड़ते हैं जैसे मैं तुमको अभी प्रत्यक्ष मालूम पड़ रहा हूँ। उस समय सत्य और कल्पना में कोई फर्क नहीं रहता। यह अनुभव बहुत थोड़ी देर ही रहता है। मगर उतनी देर में मुझे सारा का सारा नक्शा मिल जाता है और जब मैं उस विशेष अवस्था से बाहर आता हूँ तो मुझे वह नक्शा याद रहता है। हाँ, उसमें से कुछ चीजें भूल भी जाता हूँ। जैसे-जैसे देर होती जाती है, मैं उस दृश्य को, ज्ञान को भूलता जाता हूँ, इसलिए मैं जल्दी से कुछ आवश्यक चीजों को नोट कर लेता हूँ। नोट करते-करते भी कुछ चीजें भूल जाता हूँ और जिन चीजों को मैं भूल जाता हूँ उन चीजों को व्यवहार में, जीवन में गलत कर बैठता हूँ। जीवन में मैंने जितनी गलतियाँ की हैं, केवल इसलिए कि जो कुछ मुझे उस अवस्था में बोला गया था, मैं उसे भूल गया था। आज तक जीवन में जितने भी निर्णय लिये हैं, बिल्कुल ठीक-ठीक, परन्तु उसके साथ दो-चार निर्णयों में मेरी जो गलती हुई, उसका कारण यही कि मुझे एकदम स्पष्ट नक्शा मिला, मगर बाहर आते-आते मैं भूल गया।

अब सवाल यह है कि नित्य-निरन्तर गुरु से सम्पर्क कैसे स्थापित किया जाए? जब अपने अन्दर एकान्त होता है, वहाँ न भाई रहता है न बहन, न पिता रहता है न पुत्र, न सम्पत्ति रहती है, न सुख-दु:ख, न भूत, न वर्तमान, न भविष्य, न हम, न तुम, कुछ नहीं रहता, जब केवल मैं और केवल मैं रहता हूँ, वही अवस्था उस एकान्त की है। सांख्य ने उसको असंग कहा है।

जब मन अनुभूति, विचार, स्फुरण आदि से बिल्कुल शून्य हो जाता है, तब उस एकान्त में जिस गुरु के प्रति तुम्हारे अन्दर अनुरागात्मिका भक्ति है, वह तुरन्त आयेगा और वह जो गुरु तुम्हारे सामने साक्षात् रूप से उपस्थित होता है, वह ज्ञानी गुरु है। वह तुम्हें प्रेरणा देगा, रास्ता बतायेगा। उसको समझो और उस रास्ते पर चलो। मनुष्य के असहाय जीवन में गुरु एक बहुत बड़ा उजाला है और उसी को आत्मसात् करने के लिए आज के दिन शुभ संकल्पों को दुहराओ, कुछ ग्रहण करो।

अपनी बात बतलाता हूँ। गुरु पूर्णिमा के दिन इन बातों को बतलाना जरूरी होता है, क्योंकि शिष्य लोग बढ़ा-चढ़ा कर अपने गुरु को भगवान बना देते हैं। इस तरह वे अपना तो अहित करते ही हैं, बाद में गुरु का भी अहित करते हैं, और 'आप डूबे ब्राह्मण, ले डूबे यजमान' जैसी कहावत चरितार्थ होती है। जहाँ तक मेरा अपना प्रश्न है, मैं कोई प्रतिभाशाली आदमी नहीं हूँ। आरामतलबी में नम्बर एक, सच्ची बात बोलता हूँ। मुझे तुम एक महीने तक सो जाने के लिए बोल दो, मैं बिल्कुल निश्चिन्त होकर सो सकता हूँ। मेरी फिलॉसफी भी बड़ी विचित्र है। लोगों को सिखलाता हूँ 'योग', मगर आन्तरिक रूप से सोचता हूँ, क्या और क्यों करना। कुछ भी करने की जरूरत ही नहीं है, यूँ ही पड़े रहेंगे, नरक है तो ठीक, स्वर्ग है तो भी ठीक है, हम उसी में राजी हैं, क्योंकि करने और कराने वाला कोई और है। जो होना है, वह स्वत: हो ही रहा है।

यदि मन एकाग्र हो जाता है, ठीक है। यदि मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आते हैं, वह भी ठीक है। सुकर्म, दुष्कर्म, अपकर्म, कुकर्म होता है, ठीक है। जो कुछ बुरा होता है, उसका दण्ड मिलता है, वह भी ठीक है। लोग मारेंगे या राजगद्दी पर बैठा देंगे, यह भी ठीक, वह भी ठीक।

हमारे गुरुजी मुझसे जब भी पूछते थे कि तुम जप करते हो तो हम बोलते थे, आपने जितना बताया है, उतना करते हैं, उससे आगे बिल्कुल नहीं करते हैं। मैं अभी भी प्रतिदिन रात को पाँच माला जप करता हूँ, क्योंकि गुरुजी ने बतलाया है। उन्होंने कहा इसलिए करता हूँ, वैसे अपने को तो कुछ करना नहीं है। मगर मुझमें ऐसी लापरवाही होते हुए भी वे मेरे अत्यंत समीप हैं। उन्हीं के कारण मैंने बहुत काम किया है, आगे भी बहुत काम करूँगा और संस्कृति के मार्ग को, रूप को बदलूँगा, इतिहास को प्रभावित करूँगा। यह मुझे अच्छी तरह मालूम है, मगर करने वाला मैं नहीं।

यह सब मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि तुम लोग अपनी अयोग्यता, अपने दोष, दुर्गुण, चरित्रहीनता, अपने व्यसन—जुआ, चोरी, व्यभिचार, नशा आदि, जो कुछ तुम लोग करते हो, उसके बारे में सोचना छोड़ दो, एकदम ध्यान मत दो, तुम्हारे वश की चीज नहीं है। केवल सोचने और सिर मारने से क्या फायदा? केवल एक चीज का ख्याल रखो और भेद जानो कि आत्मा के एकान्त में गुरुजी को कैसे देखा जाए। गुरु-शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है, उसका मूल सूत्र है अनुरागात्मिका भक्ति। गुरु के प्रति जितना अधिक नि:स्वार्थ प्रेम-भाव होगा, सखा-भाव होगा, उतनी ही तुम्हें आन्तरिक जगत् में सफलता मिलेगी। हम सबको बोलते हैं कि गुरु किसी का बॉस या साहब थोड़े ही है। वह तो असली प्रेमी है, दिलदार है। उसके और मेरे बीच तो मधुर सम्बन्ध है, गहन प्रेम का सम्बन्ध है। उसके और मेरे बीच बुद्धि का सम्बन्ध नहीं है, वह तो हृदय का सम्बन्ध है। इस प्रकार से हम लोगों को आगे बढ़ना होगा। गुरुजी से डरने की जरूरत नहीं है। अपने प्रेमी से कोई डरता है क्या? जो बोलना है साफ-साफ बोल दो, दो-चार चप्पल लगायेंगे और क्या करेंगे? मगर गुरुजी जब-जब थप्पड़ लगाते हैं, तब-तब तकदीर जाग जाती है, नसीब खुल जाता है और चेला द्रुत गति से बढ़ चलता है अपने परम लक्ष्य की ओर। यह है गुरुजी का नकद इनाम!

यह गुरु पूर्णिमा का सुन्दर उत्सव तुम लोगों ने मनाया है, मेरे मन में स्नेह का जो थोड़ा-बहुत भाव आया, वह तुम लोगों से कह दिया। मैं केवल एक बात बोलता हूँ, तुम अपने अन्दर की सम्पूर्ण शक्ति को गुरु के रूप में जगाओ। एकान्त में वह तुम्हारे कान में कुछ बोल जायेगा। सुन लोगे और पहचान लोगे तो दुनिया में तुम्हारी गाड़ी अपनी गति से बहुत मजे में चलेगी, जिन्दगी खुशी से बीतेगी।

ज्ञान और भक्ति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

ज्ञान कहता है, बुद्धि कहती है कि भगवान के साथ एकाकार होना है, ईश्वर सायुज्य की प्राप्ति होनी है। अपने आपको भगवान में लीन कर दो, अपने अस्तित्व को मिटा दो। जिस प्रकार से एक नदी सागर में प्रवेश करके अपने अस्तित्व को खो बैठती है, उसी प्रकार अपने अस्तित्व को मिटा दो। परमात्मा में रम जाओ। किन्तु भक्ति कहती है, भावना कहती है कि नहीं, अद्वैत की अवस्था वांछनीय नहीं है, द्वैत ही होना चाहिए, क्योंकि जो अनुभूति एक मनुष्य को जीवन में भक्ति के माध्यम से हो सकती है, वह ज्ञान के माध्यम से नहीं। भक्ति में लक्ष्य हमेशा ईश्वर रहता है, हमेशा ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता है, हमेशा भगवान के प्रति श्रद्धा भाव बना रहता है। ज्ञान में तो ऐसा होता नहीं।

आपको यह मालूम होना चाहिये कि जिस ज्ञान को आप प्राप्त करते हैं वह अपने जीवन में उतारने के लिए है। अगर ज्ञान केवल बुद्धि तक ही सीमित रह जाए और हमारे जीवन में उतरे नहीं तो उस ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं रहता। जो ज्ञान हमने माता-पिता से, गुरुजनों से, समाज से प्राप्त किया है, अगर उस ज्ञान को हम अपने जीवन में चरितार्थ कर सकते हैं तब उसी में हमारी पूर्णता होती है। लेकिन ऐसे बहुत ही कम लोग होते हैं जो ज्ञान को जाग्रत कर पाते हैं, जीवन का रूप दे पाते हैं। बुद्धि मात्र एक अवस्था है मस्तिष्क की, मन की, जिसका सम्बन्ध स्थूल जगत् से रहता है। मैं अभी आपको केवल भेद बतला रहा हूँ और बाद में इनको किस प्रकार जोड़ा जा सकता है वह प्रक्रिया बतलाऊँगा।

बुद्धि से सूक्ष्म है भावना और भावना में विवेक का अंश नहीं होता। आप किसी से स्नेह करते हैं तो स्नेह करते हैं, क्योंकि करना है, उसके पीछे तर्क क्या है? आप किसी से प्रेम करते हैं तो करते ही हैं, उसके पीछे तर्क क्या है?

एक बार अकबर ने बीरबल से कहा कि संसार का सबसे खुबसूरत व्यक्ति मुझे दिखलाओ। बीरबल ने कहा, 'महाराज कुछ समय दीजिये।' कुछ महीने बीत गये, तब बीरबल अकबर से कहता है कि महाराज आप मेरे साथ चलिए, मैंने संसार का सबसे सुन्दर प्राणी खोज लिया है। लेकिन उसे मैं यहाँ नहीं ला सकता, आपको चलना पड़ेगा। अकबर ने कहा, चलो। दोनों महल से निकले और नगर की सीमा पार कर गये। नगर के बाहर जो झुग्गी-झोपड़ी थी वहाँ पहुँच गये। बीरबल ने अकबर से कहा कि आप एक पेड़ के पीछे छुप जाइये और देखिये दुनिया के सबसे सुन्दर प्राणी।

वहाँ कुछ बच्चे खेल रहे थे। एकदम काले-कलूटे और कुरूप। बीरबल कहता है कि महाराज देखिये, ये बच्चे ही सबसे सुंदर हैं। अकबर ने कहा, तुम मेरा मजाक

उड़ा रहे हो क्या? ये बच्चे तो एकदम बेढंगे हैं। बीरबल ने कहा, महाराज देखते जाइये। खेल-खेल में एक लड़का गिर गया, उसके पैर में चोट लग गई, वह रोने लगा। रोने की देर थी कि एक झोपड़ी से एक महिला निकलती है, बच्चे को अपनी गोद में उठा लेती है और कहती है, 'मेरे प्यारे राजकुमार! तुम्हें क्या हो गया है? तुम कितने सुन्दर हो, कितने अच्छे हो, रोते क्यों हो?'

बीरबल ने कहा, 'महाराज! देखिये, एक माता के लिए उसका बालक ही संसार का सबसे सुन्दर व्यक्ति होता है, सबसे अच्छा व्यक्ति होता है, सबसे स्नेही व्यक्ति होता है।'अकबर ने कहा कि बीरबल तुम ठीक कहते हो, सुन्दरता देखने वाले की आँखों में होती है।

इसी प्रकार जब कोई मनुष्य प्रेम करता है, तो करता है। वह यह नहीं सोचता कि मैं प्रेम क्यों कर रहा हूँ। कोई व्यक्ति किसी से स्नेह करता है, करता है। यह नहीं सोचता कि मैं स्नेह क्यों करता हूँ। कोई व्यक्ति ईर्ष्या करता है, करता है, यह नहीं सोचता कि मैं ईर्ष्या क्यों कर रहा हूँ। कोई व्यक्ति क्रुद्ध होता है, पर यह नहीं सोचता उस समय कि मैं क्रोध क्यों कर रहा हूँ।

भावना का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं है। भावना केवल एक वस्तु को देखकर, एक जीव को देख कर उससे प्रेम करती है, सहानुभूति दिखलाती है, और उस भावना में दो व्यक्ति एक कभी नहीं हो सकते। द्वैत रहना ही पड़ता है। जब तक दो हैं तब तक हम से प्रेम का प्रवाह जायेगा, करुणा का प्रवाह जायेगा, स्नेह का प्रवाह जायेगा, लेकिन जब एक हो जाते हैं तो हम किसको प्रेम करें?

यही विरोधाभास होता है ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग में, क्योंकि ज्ञान मार्ग कहता है कि अपने को भूल जाओ। भक्ति मार्ग में अपने को भूला नहीं जाता, बल्कि अपनी भावना को एक दिशा दी जाती है। ज्ञान में कहते हैं कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो, सच्चिदानंद स्वरूप हो, इस बात को भूलो मत। भक्ति में कहा जाता है, तुम जैसे भी हो उसको भूलो मत, केवल अपनी भावनाओं को दिशान्तरित कर दो। जो भावना अभी सांसारिकता की ओर प्रवाहित हो रही है, उसी भावना को ईश्वर की ओर प्रवाहित कर दो।

बुद्धि और भावना

भावना ही ईर्ष्या है, भावना ही प्रतिस्पर्धा है, भावना ही द्वेष है, भावना ही क्रोध है, भावना ही प्रेम है, भावना ही स्नेह है, भावना ही लोभ है। जब हमारी भावना किसी वस्तु से, किसी विषय से जुड़ती है तब उसकी झलक भावना में दिखलाई देती है। अपनी संतान के प्रति माता की स्नेह की भावना रहती है। स्त्री के प्रति पुरुष की काम भावना होती है। जो निन्यानवें के चक्कर में पड़ा है, वह अपना रिश्ता जोड़ता है ठन-ठन गोपाल के साथ, उस समय लोभ की भावना रहती है। अगर हमारे सामने हमारा कोई प्रतिस्पर्धी हो तो ईर्ष्या की भावना प्रकट होती है।

जो भावना तुम्हारे जीवन में काम, क्रोध, मद, मोह या लोभ के रूप में प्रकट होती रहती है उसी भावना को अगर तुम संसार की ओर से हटा कर दूसरी तरफ मोड़ दोगे तो उसका नाम हो जाता है भक्ति। इसी को सूफी लोग कहते हैं इश्क मजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मजाजी होता है खोपड़ी का प्रेम, वह भावना जो संसार की ओर प्रवाहित हो रही है। और इश्क हकीकी है दिल का प्रेम, जो अपने आराध्य, अपने गुरु की ओर प्रवाहित होता है। उसमें कोई कलुषित भाव नहीं, निर्मल भाव है, किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं। यही शिक्षा हमें गुरु देते हैं। गुरु की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि स्वभाव से ही मनुष्य के जीवन में बुद्धि प्रधान है। हमलोग तो कहते ही हैं कि हम बुद्धिजीवी हैं, कौन कहता है कि हम भावनाजीवी हैं। दूसरों का परिचय जब दिया जाता है तब उसकी बौद्धिक प्रतिभा का परिचय ही दिया जाता है। हम बुद्धि के चुंगल में इस प्रकार फँसे हुए हैं जिस प्रकार से एक मक्खी मकड़ी के जाल में फँस जाती है और उससे अपने आपको मुक्त नहीं कर पाती। लेकिन यह बुद्धि हमारा साथ कब तक देगी?

महर्षि अरविन्द कहा करते थे, 'प्रारंभ में बुद्धि साथी थी, लेकिन अंत में बुद्धि ही विरोध करने लगी, मेरे पथ का काँटा बन गई।' केवल उन्हें ही नहीं, सभी संतों के जीवन में ऐसा अनुभव हुआ है। जब बुद्धि ही बाधक बन जाए तब फिर बुद्धि किस प्रकार सहायक हो सकती है? ईश्वर के साथ जोड़ने में हमें बुद्धि सहायता नहीं कर पाती। खुद अपने जीवन को ही देख कर एक बार सोच लीजिए कि कब-कब बुद्धि ने आपका साथ दिया है और कब-कब भावना ने। जब-जब बुद्धि ने आपका साथ दिया है, आपने मार खायी है और जब-जब भावना ने आपका साथ दिया है आपने जीवन में प्रगति की है, आप लोगों में प्रिय बने हैं। लोगों ने आपको एक दूसरे रूप में देखा है, एक सरल, स्नेही, उदार और चरित्रवान् मनुष्य के रूप में।

जीवन के जितने सद्गुण होते हैं, वे भावना द्वारा जाग्रत किये जाते हैं, बुद्धि द्वारा नहीं। इसलिए हमारे शब्दकोष में बुद्धिजीवी बहुत प्रशंसनीय शब्द नहीं है। इससे मनुष्य का ठीक-ठीक परिचय नहीं मिलता। मनुष्य का परिचय होता है उसकी भावना से। अगर भावना ठीक रहती है, अगर भावना सरल, पवित्र, सहज, निर्मल और शुद्ध है, तब आप उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ सकते हैं। इस दुनिया में ज्ञानयोगी अनेक हुए हैं, लेकिन अंत में उन्हें अपनी बुद्धि के साथ समझौता करना पड़ा है, अपनी बुद्धि का त्याग करना पड़ा है और भावना को अपने जीवन में स्थान देना पड़ा है।

भावना के बल पर ही जीवन में आगे बढ़ा जा सकता है। आप अपने घर-परिवार में ही देख लीजिये कि बुद्धि की कद्र होती है या भावना की? आप अपने बच्चों से कहते हैं कि अपने भाई-बहन के साथ प्रेमपूर्वक बर्ताव करो, उनसे यह नहीं कहते कि ज्ञानपूर्वक बर्ताव करो। मतलब अपने व्यक्तिगत जीवन में आप बुद्धि को नहीं, भावना को प्रधानता दे रहे हैं। सामाजिक जीवन में आप भावना को प्रधानता नहीं देते, बुद्धि को प्रधानता देते हैं, लेकिन जहाँ तक व्यक्तिगत जीवन का सवाल है, भावना के बिना व्यक्ति जी नहीं सकता। बुद्धि और भावना में समझौता कराना पड़ता है। इसीलिए गुरु बतलाते हैं कि ठीक है, पहले अपने मन को समझ लो, मन में किस प्रकार के विकार और विक्षेप उत्पन्न होते हैं, यह जान लो, मन में किस प्रकार की उथल-पुथल होती है, यह समझ लो और उसके पश्चात्, जब अपने मन को तुम नियंत्रित कर सकते हो, तब भावना को प्रधानता दो। यही सूत्र है जिसको आज हमें जानना चाहिये, सीखना चाहिए।

गुरु कौन है?

गुरु किसको कहते हैं? सामान्य रूप से तो हम किसी भी शिक्षक को गुरु कह देते हैं। लेकिन नहीं, गुरु शिक्षक नहीं होते। ईश्वर के अनेक नामों में एक नाम गुरु आता है। ईश्वर के दो रूप होते हैं। एक होता है साकार रूप, जिसे आप विभिन्न नामों से बुलाते हैं। कोई राम कहता है तो कोई कृष्ण। और ईश्वर का दूसरा रूप होता है निराकार। निराकार का मतलब जिसकी कोई आकृति नहीं है, जो सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ

है, सर्वशक्तिमान् है। शरीरधारी में किसी गुण का अभाव हो सकता है, लेकिन जो सर्वव्यापी है, उसमें किस का अभाव रहेगा? जो सर्वज्ञ है, वह किस प्रकार अनजान बना रहेगा? जो सर्वशक्तिमान् है, क्या वह कभी कमजोर हो सकता है? नहीं। और यह जो सर्वव्यापी ईश्वर है, वही गुरु है।

गुरु भगवान का एक गुण है। जैसे भगवान के गुणों में कहते हैं कि वह सत्य है, शिव है, सुन्दर है, सत् है, चित् है, आनन्द है। सत् या सत्य एक गुण है, चेतना की एक उच्च अवस्था है जिसमें ईश्वर की वाणी सुनाई देती है। शिव क्या कोई देव हैं कैलास में बैठे हुए या जो मंगलकारी गुण हैं इस जगत् में उनका नाम शिव है? सुन्दर क्या है? क्या केवल वही चीज जो दृष्टि को प्यारी लगती है? नहीं। सुन्दर तो यह समस्त सृष्टि है। और इस सृष्टि को आज तक किसी ने समझा नहीं है। विज्ञान ने तरक्की की है, लेकिन सृष्टि के रहस्य को नहीं जान पाया है। विज्ञान दूसरे ग्रहों में यान और मनुष्य को भेज सकता है, लेकिन विज्ञान में यह क्षमता नहीं कि एक धूल के कण का निर्माण कर सके। इसको कहते हैं सृष्टि का रहस्य। यह सृष्टि जिसमें आप जीते हैं, जिसमें आप रहते हैं और जिसमें ईश्वरत्व का बोध होता है, बहुत सुन्दर है।

ठीक इसी प्रकार से गुरु शब्द भी है, क्योंकि यह तो अंतरात्मा की चेतना की एक स्थिति का नाम है, एक अवस्था का नाम है, जिसमें अज्ञान का आवरण नहीं रहता, बल्कि आत्मा का प्रकाश चैतन्य हो उठता है। और यह गुरु हम लोगों के जीवन में उसी प्रकार अपरिहार्य है जैसे हमारे शरीर में श्वास, मन या इन्द्रियाँ अभिन्न अंग हैं। श्वास, मन या इन्द्रियों को अपने जीवन से हटा दीजिये, क्या बचेगा? उसी तरह गुरु को हटा दीजिये अपने जीवन से, क्या बचेगा?

हमलोग अपने अज्ञान के कारण यही सोचते हैं कि गुरु शरीरधारी हैं, एक पहुँचे हुए मानव हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं। जिस शरीरधारी को हम गुरु मानते हैं वह तो एक ऐसा व्यक्ति था जिसने अपने ऊपर शोध किया कि मेरे भीतर का रहस्य क्या है और उस रहस्य को जाना। इस संसार का रहस्य क्या है, उस रहस्य को जान पाया। वही एक व्यक्ति है जिसने अनिर्देशित अवस्था को समझा है और इस क्षमता को प्राप्त किया है कि उस अनिर्देशित अवस्था के बारे में हमलोगों को समझा सके, दिशा निर्देश दे सके।

गुरु शिक्षक नहीं होता। गुरु मनुष्य को अपनी अंतरात्मा के साथ जोड़ता है। वह एक शक्ति है, एक गुण है, एक अवस्था है। आज हम लोग जो गुरुपूर्णिमा मनाते हैं उसका एक ही प्रयोजन है—संसार में आज तक जितने भी पथ प्रदर्शक हुए हैं, उनके प्रति हम अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं, यह कहकर कि अगर आप नहीं रहते तो हम नहीं जानते हमारी क्या हालत होती। आप के कारण ही अध्यात्म का विकास हुआ, संस्कृति का उत्थान हुआ, जीवन में प्रतिभा का जागरण हुआ। इस प्रकार भौतिक स्तर पर हम विश्व-गुरुओं के प्रति नतमस्तक होते हैं। किन्तु वास्तव में यह दिन तो है

शिष्यों का, श्रद्धालुओं का, भक्तों का, जो संकल्प लेते हैं कि हमें जो मार्ग बतलाया गया है उस पर हम बढ़ते जायें, जिससे भीतर की अमावस की अंधियारी दूर हो सके और वहाँ पूर्णिमा का प्रकाश फैल सके।

प्रकाश को तो वहाँ लाना है जहाँ अंधकार है। जो स्वयं प्रकाशित है उसे तो अपने जीवन में प्रकाश लाने की आवश्यकता नहीं। इसलिए आज का दिन दो भावों को लेकर आता है। पहला है विश्व गुरुओं के प्रति श्रद्धा, जिनके कारण आज भी हमारे जीवन में कुछ अच्छे संस्कार हैं, कुछ अच्छे विचार हैं। दूसरा है वह संकल्प कि हमारे जीवन में प्रकाश का अवतरण हो, अंधकार दूर हो। इसलिए यह दिन भले ही हम लोग मनाते हैं गुरु पूर्णिमा के रूप में, लेकिन यह तो वास्तव में है शिष्य-पूर्णिमा। अब इसका अर्थ आप अपने लिए स्वयं निकाल लीजिए। हमें जो कहना था, वह हमने समझा दिया। अब आपको निर्णय लेना है कि अच्छाई को चरितार्थ किस प्रकार करें। जीवन का एक ही प्रयोजन है, अच्छाई को चरितार्थ करना। बाकी सब तो होता रहता है, कभी ईर्ष्या है, कभी राग है, कभी द्वेष है, कभी अनिच्छा है। यह सब तो होता ही रहता है, जिसको कहते हैं चलती का नाम गाड़ी, लेकिन साथ ही अच्छाई को चरितार्थ करना है। यह हर मनुष्य का संकल्प और लक्ष्य होना चाहिए। आज का दिन यही संदेश, यही शिक्षा लाता है। इस शिक्षा को जब आप अपना सकेंगे तब आपका जीवन सत्य एवं शिव से परिपूर्ण होगा और सुन्दर हो जायेगा।

–गुरु पूर्णिमा 1999, गंगा दर्शन

सत्यम् वाणी

स्वामीजी, हमलोगों के लिये आशीर्वाद दीजिए।

देखो जी, आशीर्वाद तो केवल भगवान देते हैं। मनुष्य तो दूसरे मनुष्य के लिये शुभकामनाएँ ही दे सकता है। वैसे भगवान का आशीर्वाद तो हर आदमी को प्राप्त रहता है। भगवान हर आदमी को आशीर्वाद देते हैं। बहुत समय बीतने पर विचार करोगे तो तुम्हें लगेगा कि मनुष्य के जीवन में जो हुआ है और जो होता है वह पहले से पूर्णत: निश्चित होता है। वैसे संसार में पुरुषार्थ पर बोलने वाले बहुत हैं, किन्तु मनुष्य के जीवन की पूरी कहानी पहले ही लिखी जाती है। कौन लिखता है, किसलिये लिखता है, वह तो बहुत लम्बी-चौड़ी बातें हैं, उसको बतलाने से कोई फायदा भी नहीं है।

हम इतने वर्षों का जब सिंहावलोकन करते हैं तो केवल एक ही चीज समझ में आती है कि मैंने तो कुछ किया नहीं। जो किया वह इसलिये किया कि वह समय-समय पर होना था। अब युवा अवस्था में तो आदमी ऐसा सोचता नहीं है और शायद मानसिक विकास के लिये उसे सोचना भी नहीं चाहिये। उस समय मनुष्य पुरुषार्थवादी रहता है, किन्तु जब वह गहरे चिन्तन में जाता है और अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करता है, उस पर निष्पक्ष रूप से विचार करता है तब उसे पता चलता है। ईश्वर को मानो अथवा न मानो, दोनों चलेगा। पर एक बात पक्की है कि जीवन में मैंने अब तक जो किया वह इसलिये किया क्योंकि वह होना था। जब ऐसा ही है तो आदमी खोपड़ी क्यों मारता है, मुझे समझ में नहीं आता। खोपड़ी इसलिये मारता है क्योंकि उसे इस बात पर यकीन नहीं होता।

आदमी कहाँ से आता है, कहाँ जाता है, कोई प्लानिंग काम नहीं करती। मेरा तो यहाँ आने का इरादा था ही नहीं। मुझे तो सेवानिवृत्त होना था। ऋषिकेश में मेरे गुरुजी का बहुत बड़ा आश्रम है, एक कुटिया मुझे कहीं भी आराम से दे देते। गंगोत्री में मेरी एक गुफा है, अभी भी ताला रहता है उसमें, मैं वहाँ भी रह सकता था। मगर यहाँ आकर जम गया। और यहाँ आने का निर्णय, यहाँ आने से करीब चार दिन पहले लिया, जबकि गंगोत्री का निर्णय महीनों का था, वर्षों का था। ऋषिकेश का निर्णय भी वर्षों का था, वह भी फेल हो गया। यहाँ का चार दिन का निर्णय पास हुआ। यह सब चीजें समझ में नहीं आती हैं।

मनुष्य को हमेशा यह समझकर रखना चाहिये कि उसका स्थान, उसकी औकात क्या है। अखिल अनन्त ब्रह्माण्ड को छोड़ो, अपने सौर-मण्डल को ही ले लो। तुम्हारे अपने सौर-मण्डल में तुम्हारी पृथ्वी का क्या स्थान है? उस पृथ्वी में तुम्हारे हिन्दुस्तान का क्या स्थान है? उस हिन्दुस्तान में तुम्हारे मुंगेर या देवघर का क्या स्थान है? उस देवघर में तुम्हारे रिखिया का कहाँ पर स्थान है? उस रिखिया में मेरे घर का

कहाँ पर स्थान है और उस घर में मेरा कहाँ स्थान है? कहीं है ही नहीं, फिर भी मेरा 'मैं' कितना बड़ा है! जैसे अणु के अंदर परमाणु घूमते हैं, मनुष्य का इस संसार में अस्तित्व भी वैसा ही है। अपना-अपना जिसने जो किया, वैसा वह पा रहा है। इस जन्म में पाया, अगले जन्म में पाएगा। कुछ अच्छा किया तो गुरुजी मिल गये, कुछ गलत किया तो हो सकता है अगले जन्म में भी नहीं मिलें, क्या मालूम?

भक्ति

मैं तो योग के बारे में अब बिल्कुल भूल गया हूँ। दूसरे लोगों के विचारों के बारे में अब कोई राय भी नहीं रखता, क्योंकि यही देखा है कि लोग वही करेंगे जो वे करना चाहते हैं, और उनको रोकने की कोशिश में खुद को थकाने से कोई फायदा

नहीं। जब से मैं यहाँ आया हूँ मेरा यही प्रयास रहा कि भक्ति को छोड़कर बाकी सब विचारधाराओं, मतों और सिद्धान्तों से अपना नाता किसी तरह तोड़ दूँ। योग अब मुझसे बहुत दूर चला गया है। मैं तो अनेक आसन-प्राणायामों के और इस क्षेत्र में मुझसे जुड़े बहुत-से लोगों के नाम तक भूल गया हूँ। चेहरे धुंधले होते जा रहे हैं। अब मेरा पूरा ध्यान और लगन भक्ति पर है। मैं यही चाहता हूँ कि मेरी सभी भावनाएँ, विचार और कर्म केवल भक्ति की वृद्धि पर केन्द्रित हों। मेरे लिए भक्ति का सीधा-सा मतलब है। मैं नौकर हूँ और वह मालिक। जो वे कहेंगे, मैं करूँगा। अगर वे चाहते हैं कि मैं अपना शरीर छोड़ दूँ तो मैं उसक लिए भी तैयार हूँ। और अगर उनकी मर्जी है कि मैं उनका कोई और आदेश पूरा करूँ तो क्यों नहीं?

अब मेरे सोचने का तरीका बिल्कुल अलग है। कोई मूलाधार या सहस्रार चक्र नहीं, कोई इडा, पिंगला, सुषुम्ना नहीं। मेरा रास्ता अब बहुत सरल है। साल में एक बार मैं बाहर आकर गांव वालों से मिलता हूँ और सीता-राम का विवाह मनाता हूँ। बुद्धिजीवियों और विद्वानों के लिए यह समझ के परे की बात होगी कि कैसे दशनामी परम्परा का एक संन्यासी सीता और राम का विवाह मनाता है। लेकिन मेरे लिए यह बहुत आनंद का विषय है। मैं निम्नतर और उच्चतर मन को आपस में जोड़ने में बेशक असमर्थ हूँ, लेकिन मुझे सीता और राम के विवाह में बहुत आनंद आता है, मैं उसे निश्चित रूप से महसूस करता हूँ। जो मैं दर्शनशास्त्र, योग या ध्यान के माध्यम से अनुभव नहीं कर पाया, वह मैं सीता और राम के विवाह में भावनाओं के माध्यम से अनुभव कर पाता हूँ। सीता और राम ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो मेरी आँखों के सामने नहीं हैं, पर मैं उनका अनुभव करता हूँ। जो मेरे सामने न हो, उसे फिर भी अपने मनपसंद रूप में अनुभव करने में जो आनंद आता है उसकी बात ही कुछ और है। वह जादू का काम करता है। सिर्फ मेरे लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी। इस साल सीता कल्याणम् में पूरी पंचायत उमड़ पड़ी। दूर-दूर से लोग सीता के लिए दहेज लेकर आए। मैंने छः सौ से ज्यादा नववधुओं को सुहाग-पेटियाँ बाँटी होंगी। हर पेटी में जो कपड़े-गहने वगैरह थे, उनकी कीमत तीस-चालीस हजार रुपये से कम नहीं होगी। सोने के गहने तो इन लोगों को बहुत ही पसंद आते हैं।

सच्चाई वह नहीं है जो तुम देखते हो, सच्चाई वह है जो तुम देख नहीं सकते। सच्चाई वह नहीं है जो तुम आँखों से देखते हो या मन से सोचते हो, बल्कि वह है जो तुम भावनाओं से अनुभव करते हो। भावना के कारण कोई औरत तुम्हारी पत्नी बन पाती है। पत्नी के साथ तुम्हारा सम्बन्ध सच है, यथार्थ है, क्योंकि उसका आधार भावना है। भावनाएँ ही सच्चाई को सामने लाती हैं, न कि दर्शनशास्त्र या इन्द्रिय जनित अनुभूतियाँ। भावना की वजह से तुम्हारा बेटा तुम्हें बाप बोलता है। भावनाएँ ही वास्तविकता का, यथार्थ का और सच्चाई का निर्माण करती हैं। ऐसी भावनात्मक सच्चाई का जीवन में होना अनिवार्य है।

इसलिए मेरा रास्ता अब बिल्कुल अलग है। मुझे परवाह नहीं कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं, क्या बोलते हैं। मुझे अब भक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ना है।

मीराबाई

मीरा बहुत महान् भक्त और संत थी। बचपन से वह भगवान के नशे में चूर हो गई थी। बड़ी होने पर उसकी शादी चित्तौड़ के राजकुमार से करा दी गई। चित्तौड़ उस समय पश्चिम भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य था। लेकिन वहाँ बात बन नहीं पाई, क्योंकि वह मानती थी कि उसकी शादी तो कृष्ण भगवान से हुई है। उसके लिए यही भावनात्मक सच्चाई थी। दूसरे लोग इस चीज को समझने या मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनके लिए तो वही व्यक्ति उसका पति था जिससे उसकी शादी हुई थी। लोगों की सोच-समझ तो बस शरीर और इंद्रियों तक सीमित थी। इस सब के बीच कृष्ण कौन हुए? तब उन लोगों ने मीरा को जान से मारने की कोशिश की। लेकिन मीरा का बाल भी बाँका नहीं हुआ। उसने चित्तोड़ छोड़ दिया और मथुरा-वृन्दावन आ गई। वहाँ काफी देर रहने के बाद द्वारका पहुँची। उसे कितनी दिक्कत हुई होगी। उस वक्त किसी राजघराने की औरत घर से बाहर निकली, मथुरा-वृंदावन गयी और लोग उसको पागल कहते थे। पर क्या वह पागल थी? आज भी सारी दुनिया उसके गीत गाती है। फिर वह पागल कैसे हो सकती है?

–21 दिसम्बर 1997, रिखियापीठ

पूज्य गुरुदेव की व्यावहारिक ट्रेनिंग

स्वामी गौरवनाथ सरस्वती

सन् 1970 में मैं मुंगेर के पुराने आश्रम आया जहाँ मेरी ट्रेनिंग शुरू हुई। जब से गुरुदेव की शरण में आया, उन्होंने जो ट्रेनिंग हमें दी वह दुनिया के किसी भी आश्रम या संस्था में नहीं है। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में ट्रेनिंग दी है, सब व्यावहारिक रूप से सिखाया है।

आश्रम में आते ही पहली चीज जो सीखी वह था कर्मयोग। सुबह से शाम तक दिनभर लगातार काम। जल्दबाजी में बाजार जाओ, वहाँ से आओ, फिर दौड़ो। उस समय आश्रम में ऑफिस इन्चार्ज, गार्डन इन्चार्ज, प्रेस इन्चार्ज और किचन इन्चार्ज जैसे सात-आठ इन्चार्ज थे और उनके बीच था मैं। सभी सीनियर इन्चार्ज काम चाहते थे, इतने बजे ऑफिस में आना, इतने बजे प्रेस जाना, इतने बजे गार्डन में आना, इतने बजे किचन में। सोने-खाने का समय ही नहीं। सारे कामों की एक लिस्ट बना दी। गुरुजी भी आश्रम में नहीं थे, मैं बड़ा परेशान था, लगा कि इतने इन्चार्ज हैं, काम करते-करते मैं यहीं पर खत्म हो जाऊँगा।

खाने-पीने का भी कोई हिसाब नहीं। गेहूँ का दलिया, वह भी बिना पका हुआ और कभी उसमें नमक भी नहीं। मैं बिस्तर में जाकर रोज सोचता था कि कल सुबह उठूँगा और भागूँगा। सुबह तीन-साढ़े तीन बजे उठता और जैसे ही जप करना शुरू करता तो मन में पहला प्रश्न यही आता कि तुम यहाँ पर क्यों आये हो। बस जैसे ही सोचता, सब साफ। फिर दिनभर काम में लग जाता था।

फिर गुरुदेव आए, क्लास शुरू हुई। और क्लास भी कैसी? एक-डेढ़ बजे उठाकर चार-पाँच घण्टे आसन क्लास करवाते थे। किसी के पास घड़ी नहीं थी, सबकी घड़ियाँ उन्होंने ले ली थीं। अब हम बाहर झाँकते रहते कि सुबह कब होगी। इस बीच आसन करते जाते थे। बाद में श्री स्वामीजी बोलते थे कि हमें लगा कि चार बज गए हैं, इसलिये तुम लोगों को उठा दिया। यह सुनकर और गुस्सा आता था!

कमरे में दो धोती और एक चौकी रहती थी, उस समय तो गद्दा भी नहीं था। कम्बल बिछाओ, चादर वगैरह मिल गई तो ठीक, उसी पर सोते थे। उसमें भी कभी-कभी गुरुदेव कमरा देखने पहुँच जाते थे, कहीं बढ़ाकर माल तो नहीं रखा है। वे देखते थे और कहते थे, बहुत अच्छा साफ-सुथरा कमरा है। साफ-सुथरा तो रहेगा ही, सामान होता तो कमरे में बिखरता!

लालच बुरी बला

उस समय का भोजन ऐसा था कि हम ताक में लगे रहते थे कि कोई भक्त फल-मिठाई लेकर आये। उस समय संन्यास ट्रेनिंग चल रही थी। बहुत कम भक्त आते

थे। एक बार कोई भक्त चार-पाँच पॉलीथिन थैलों में सेब, केला, अंगूर, संतरा वगैरह लेकर आये। हम दो-तीन कम उम्र के संन्यासी थे, स्वामी निरंजन जी तो 1971 में विदेश चले गये। जब तक थे, साथ में शैतानियाँ करते थे। परिस्थिति देखकर हम लोगों की योजना तुरन्त बन जाती थी।

हम लोगों ने उस समय भक्त को आते देख लिया। गेट इंचार्ज संन्यासी से कहा, 'आप दिनभर गेट पर बैठे रहते हो, थोड़ा घूम आओ। हमलोग गेट संभाल लेंगे।' उन्हें खिसकाकर हम और दो संन्यासी गेट पर रह गये। जब भक्त आये उन्हें चौकी पर बिठाया। फिर गुरुजी को अन्दर खबर दी कि एक भक्त आपके दर्शन के लिए आये हैं। वे बोले, 'ठीक है। पाँच मिनट के बाद उनको ले आना।' भक्त पॉलीथिन को उठा रहे थे। हम बोले, 'इसे यहीं रहने दीजिए। पहले आप गुरुजी का दर्शन कीजिए।'

भक्त को गुरुजी के पास पहुँचाकर गेट इंचार्ज संन्यासी को, जो इधर-उधर घूम रहे थे, बुलाकर कहा, 'अब अपना गेट देखो।' हम लोग फल के थैले प्रेस बिल्डिंग में ले गये और सब खत्म कर दिये। मालूम था कि यह फल खाने के बाद आगे क्या फल मिलेगा, इसलिए एक भी टुकड़ा नहीं छोड़ा!

अन्त में भक्त चले गए। जाते समय वे श्री स्वामीजी को बता गए थे कि फल लाये हैं। उनके जाने के बाद गुरुजी ने गेट वाले संन्यासी से पूछा, 'फल कहाँ रखे हैं? यहाँ पर ले आओ।' अब उनको क्या फल मिलते, वे तो हमने निपटा दिए थे। गेट इंचार्ज बोले, 'स्वामीजी, यहाँ पर फल नहीं हैं।' उन्होंने पूछा, 'तुम कहाँ थे? थैले कहाँ गए?' 'थोड़ा इधर-उधर टहलने गया था। गेट पर गोरखनाथ और दो संन्यासी थे।' गुरुजी ने हिसाब लगा लिया। पूछा, 'यह गोरखनाथ कहाँ है?'

हम लोग खा-पीकर घूम रहे थे। मालूम था ही कि क्या होगा। उम्र में हम बड़े थे, स्वामी निरंजन जी और दूसरे संन्यासी छोटे थे। प्रसाद वे आगे आकर लेते थे, डाँट खाने के काम में वे हमें ढकेलकर आगे कर देते थे। हमने सोचा, कोई बात नहीं। हम कमरे के अन्दर गये। गुरुजी ने पूछा, 'जब तुम गेट पर थे, एक भक्त कुछ फल लाया था, क्या-क्या लाया था?' हमने सच-सच बता दिया, 'अमरूद, सेब, केला, अंगूर, चार-पाँच पॉलिथिन थैले थे।' अब स्वामीजी को भी लगा कि

चार-पाँच पॉलिथिन के फल यह खाएगा कैसे। बोले, 'फल कहाँ हैं, बताओ जल्दी से?' हम बोले कि हम खा गये। बाकी दोनों के भी नाम गिना दिये।

वहीं से उन्होंने गेट वाले संन्यासी को बुलाकर कहा कि गेट पर कुछ सामान नहीं छोड़ा जाएगा। साथ ही एक चिट लिखकर किचन में भिजवा दी कि इन तीनों का नाश्ता और लंच बन्द। जो खाये वह दिनभर के लिए पर्याप्त था।

अहंकार की परीक्षा

अहंकार सबसे खतरनाक शत्रु है, सब जानते हैं। देखिये गुरुदेव हमें कैसी ट्रेनिंग देते थे। एक बार हम किचन इंचार्ज थे। श्री स्वामीजी ने ऑफिस इंचार्ज संन्यासी को बुलाकर कहा कि किचन जाकर एक बाल्टी ले आओ। वह दौड़कर गया। गुरु-आदेश के आगे कौन किसकी परवाह करे। मैं उस समय किचन के बाहर था। जब वह बालटी निकालकर आ रहा था, मैंने उसे देख लिया और तेजी से हाथ पकड़ लिया। मैं नौजवान, तगड़ा था। रौब से कहा, 'बाल्टी कहाँ ले जा रहे हो? नीचे रखो।' वह बोला कि गुरुजी मंगा रहे हैं। हमने पूछा, 'तुम्हारे पास लिखित चिट है?' वह बोला कि चिट की क्या जरूरत है। हमने कहा, 'यह बाल्टी वापिस किचन के अन्दर रखो।' वह बोला, 'नहीं, मैं भी ऑफिस इंचार्ज हूँ। गुरुदेव का आदेश है बाल्टी लाने का।' हमने झट-से उसके हाथ से बाल्टी खींची और अन्दर रख दी। वह बड़बड़ाते हुए गुरुजी के पास चला गया।

गुरुजी तुरंत बात समझ गए। आखिर सब उनकी योजना थी भिड़ाने की। वे हँस दिए, कुछ नहीं बोले। पन्द्रह दिन बाद मुझे बुलाकर कहा कि ऑफिस में मेज के ऊपर एक हरे रंग की फाइल रखी है, उसे लेकर आओ। जैसे ही मैंने ऑफिस में घुसकर हरी फाइल उठाई, ऑफिस इंचार्ज ने दोनों हाथों से कसकर दबा दिया कि यह निकाल न पाए। मैंने कहा, 'फाइल दो।' वह बोला, 'चिट लाओ।' किसी तरह मैं फाइल झपटकर ले आया और स्वामीजी को दे दी। ऑफिस इंचार्ज मेरे पीछे-पीछे बड़बड़ाते हुए आ गया। हम दोनों गुरुदेव के सामने थे। गुरुजी ने पूछा, क्या हुआ, तो अपना-अपना किस्सा सुनाया।

गुरुजी पहले ऑफिस इंचार्ज से बोले, 'जब तुम से बाल्टी मँगाई थी, तो तुम्हारा कर्तव्य था कि पहले किचन इंचार्ज से पूछते, नहीं तो कोई भी मेरे नाम से कुछ भी ले जाएगा। तुम तो सीधे किचन में घुस गये। अच्छा हुआ तुम्हें सजा मिली।' मुझे बड़ी खुशी हो रही थी कि गुरुजी मेरा समर्थन कर रहे हैं। फिर मेरी तरफ देखकर बोले, 'ऑफिस की फाइल कोई मामूली चीज नहीं है। इतनी बड़ी संस्था है, एक भी फाइल, एक भी कागज इधर-उधर हो जाएगा तो कुछ भी हो सकता है।'

इस तरह दोनों को समझा दिया, दोनों समझ गए। फिर बोले कि किचन में आज एक ही थाली में खाना खाओ। हम दोनों ने एक ही थाली में खाना खाया।

दोनों एक-दूसरे को पकड़कर खूब हँसे। देखिये गुरुदेव अहंकार को कैसे बढ़ाते थे, तोड़ते थे, और फिर दोस्ती भी करवा देते थे ताकि एक-दूसरे से अलग न हों।

खोपड़ी मत लगाओ

हमलोग गुरु-आदेश के बाद भी अपनी खोपड़ी जो लगाते हैं, उस बारे में भी गुरुदेव ने परीक्षा ली। एक बार गुरुदेव ऑस्ट्रेलिया के दौरे से लौटे तो कलकत्ते होते हुए धनबाद आए। उस समय हम धनबाद आश्रम में थे। साथ में दो संन्यासी और थे। उन्होंने सभी कमरे घूमकर देखे और फिर कहा, 'देखो, जो भी सामान जिस कमरे में है, उसको वैसे ही रहने देना।' इसके बाद गुरुजी मुंगेर लौट गए।

उनके जाने के कुछ दिन बाद हमने दोनों संन्यासियों को बुलाकर कहा, 'दरवाजे के बगल में यह अलमारी ठीक नहीं लग रही है, इसे उधर कोने में रख दो तो ज्यादा अच्छा रहेगा।' दोनों ने मिलकर अलमारी कोने में खिसका दी। ठीक तीसरे दिन गुरुदेव का टेलीग्राम मिला, 'Leave the ashram immediately' हमें अंग्रेजी पढ़नी तो आती नहीं थी, इसलिए उन लोगों ने पढ़कर सुनाया। हमने अपनी खोपड़ी लगाई, सोचा कि शायद आश्रम छोड़कर गुरुजी हमें मुंगेर बुला रहे हैं। बात को टाल दिया। फिर ठीक तीसरे दिन इसी तरह का दूसरा टेलीग्राम आया। वे लोग बोले कि लगता है अब आपको आश्रम को हमेशा के लिए छोड़कर जाना पड़ेगा। मैंने कहा, 'चुप रहो, अंग्रेजी पढ़कर भी इतनी-सी बात नहीं समझते हो। कहने का मतलब है कि इस आश्रम को छोड़कर मुंगेर जाना है।'

मैंने थैला उठाया और मुंगेर आश्रम आ पहुँचा। गेट वाले संन्यासी ने श्री स्वामीजी को खबर दी कि गोरखनाथ आया है। उन्होंने पूछा, किसलिये आया है। मैंने कहा कि यहाँ मुझे गुरुजी ने टेलीग्राम भेजकर बुलाया है। मैंने टेलीग्राम भी दिखा दिया। गुरुजी ने फिर गेट वाले संन्यासी से पूछा कि टेलीग्राम में जो लिखा है, क्या वह उसका मतलब समझता है। उसने पूछा तो हम बोले कि अच्छी तरह समझकर आये हैं। दो बार टेलीग्राम आया, धनबाद आश्रम को छोड़ो और सीधे मुंगेर आ जाओ।

फिर श्री स्वामीजी ने अन्दर बुलाया। मैं गया तो वे बोले, 'तुम्हें याद है, पन्द्रह दिन पहले जब मैं कलकत्ते से धनबाद आया था, तो तुमसे क्या कहा था?' थोड़ी देर सोचने के बाद तुरन्त याद आया। मैंने कहा, 'हाँ! आप बोले थे कि कोई भी सामान नहीं हटाना है। जिस कमरे में जैसा रखा गया है, उसे वैसे ही रहने दो।' वे बोले, 'तो मेरे आदेश का पालन क्यों नहीं किया? ज्यादा खोपड़ी मत लगाओ, जो बोला जाता है चुपचाप करो, नहीं तो कपड़े बदलो और आश्रम छोड़ दो।' उनके ये शब्द, 'खोपड़ी मत लगाओ, जो बोला जाता है वैसा करो' हमेशा याद रहते हैं। यह हमलोगों का अहंकार ही है कि हर जगह अपनी मर्जी के अनुसार फेरबदल करना चाहते हैं। जो सामान जहाँ हो, चुपचाप वहीं पड़े रहने दो। इसी में शिष्य की बुद्धिमानी है।

कर्मयोग की शिक्षा

एक बार आश्रम में एक बड़े विद्वान् आये। आते ही बोले, 'मैंने चारों वेद पढ़े हैं, मुझे पूरी गीता कण्ठस्थ है।' हमने जाकर श्री स्वामी जी को बताया कि ऐसे महाशय आए हैं, बोलते हैं कि संन्यास लेंगे। बोले, ठीक है, उनसे भी मिलेंगे। गुरुदेव के पास जब मिलाने ले गये तो वे और बड़ाई करते हुए बोले, 'देखो, ये संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् हैं। तुम सब संन्यासी लोग इन्हीं से संस्कृत सीखो।' वे फूल गये। एक दिन सब संन्यासियों के साथ एक क्लास भी हुई। अब उनको लगने लगा कि मैं ही यहाँ पर सब कुछ हूँ।

उस समय मैं शिवानन्द कुटीर में रहता था। श्री स्वामीजी ने कहा कि इनको कुछ दिन के लिए वहीं रख दो। संन्यासियों का क्लास लेने के बाद उनका अहंकार और चढ़ गया था। उन्हें लगा कि वे बहुत ऊँचे हो गये हैं। एक दिन मैंने उनके कमरे के सामने झाड़ू, पोंछा, डस्ट-पेन सब रख दिया और उनके कमरे के सामने एक टाईम-टेबल लटका दिया कि कितने बजे क्या करना है। सफाई का समय, कर्मयोग का समय, सब लिख दिया। उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया। झाड़ू देखकर सोचा कि उनके कमरे में कोई झाड़ू लगाने आयेगा। उन्होंने झाड़ू को किनारे कर दिया।

मैंने उनको झाड़ू को किनारे करते हुए देखा तो बाद में झाड़ू और पोंछा उनके कमरे के अन्दर कोने में रख दिया। सोचा कि देखते हैं क्या करते हैं। वे बाहर आ गये। हम बरामदे में सफाई कर रहे थे, वहाँ भी वे मेरे पीछे-पीछे प्रवचन देने लगे। यह नहीं कि वहाँ झाड़ू लगाने में मदद करें। अन्त में हम बोले, 'सुनिये, आपके कमरे में झाड़ू वगैरह सब रख दिया है। थोड़ी साफ-सफाई कीजिये। यहाँ पर कोई नौकर-चाकर नहीं है। हम ही लोग सेवक, नौकर, सब कुछ हैं। समझ गए न?' मैंने

जैसे ही कहा, वैसे ही वे रेलवे टाईम-टेबल निकालकर देखने लगे कि कौन-कौन सी ट्रेन यहाँ से जाती है। हम समझ गए। नाश्ता आया तो उन्हें नाश्ता दिया।

नाश्ता करके वे बोले, 'मुझे अन्दर से ऐसा लग रहा है कि मेरे घर में किसी की तबियत ठीक नहीं है। लगता है कि मुझे अभी जाना पड़ेगा।' हम बोले, 'थोड़े दिनों के बाद चले जाइयेगा, अभी तो आपका गुरुजी के साथ सत्संग भी नहीं हुआ है।' वे बोले, 'नहीं-नहीं, निकलना बहुत जरूरी हो गया है। मैं रातभर सो नहीं पाया। लगता है जाना ही पड़ेगा।' हम बोले, 'ठीक है, गुरुजी को खबर दे देते हैं।'

श्री स्वामीजी से जब मिले तो उन्होंने पूछा, 'क्या हाल-चाल है उसका?' मैंने बताया कि वे बोरिया-बिस्तर बाँधकर घर जाने वाले हैं। वे बोले, 'बस! हो गया उसका आश्रम-प्रवास। ये सब महान् विद्वान् लोग पढ़-लिखकर आते हैं, पर कर्मयोग से भागते हैं।' उसी दिन वे बोरिया-बिस्तर बाँधकर भाग गये। जाते समय हमें कुछ दान-दक्षिणा दे रहे थे, पर हम बोले कि आप ही रखिये, रास्ते में मूँगफली-दाना खा लेना।

गुरु पर विश्वास

एक दिन हम लोगों को गुरुदेव ने आश्रम से निकाल दिया। जनवरी का महीना था, बहुत ठण्ढ थी। गुरुजी का बाहर सत्संग चल रहा था, कोई हॉल के अन्दर बैठकर गप्प मार रहा था। उनको आवाज सुनाई पड़ रही थी। मैं अपने समय पर हॉल में कीर्तन के लिये गया था। अब जो गप्प मार रहे थे वे बाहर निकलकर भागे और हम अन्दर रह गये। स्वामीजी का सत्संग खत्म हुआ। उन्होंने बुलवाया कि हॉल में कौन-कौन है। हम तीन लोग जब सामने गये तो उन्होंने कुछ नहीं पूछा कि कौन था, कैसे क्या हुआ। डाँट-डपट कर हम तीनों को आश्रम से निकाल दिया। बस एक-एक धोती पहने हुए थे।

उस समय स्वामी शंकरानन्द जी एक गेस्ट हाऊस में रुके थे। वे बराबर आश्रम आते-जाते रहते थे। हम उनका दरवाजा खटखटाकर बोले, 'एक-आध चादर दे दीजिए। बहुत ठण्ढ है।' उन्होंने पूछा कि आप लोग इतनी ठण्ढ में बाहर क्यों निकले हैं। हम बोले कि बहुत जरूरी काम से दरोगा जी के पास जाना है, गुरुजी भेजे हैं। वे बोले, 'अगर गुरुजी काम के लिए भेजते तो कंबल-चादर देकर भेजते। खुद तो निकले हो, मुझे भी निकलवाओगे।'

आश्रम में एक बूढ़ी माताजी थीं, सत्यप्रेम। हमने सोचा कि अब वहाँ माँगे। उनको पहले से ही गुरुजी का फोन चला गया था कि ये लोग आयेंगे, गेट मत खोलना और कुछ माँगें तो मत देना। वहाँ गये तो बोलीं, मैं सब समझ गई हूँ, कुछ नहीं मिलेगा, जाओ।

गंगा के किनारे कष्टहरणी घाट पर एक साधु बैठकर रोज धूनी जलाता था। हमने सोचा कि थोड़ी देर धूनी के पास बैठकर आग तापेंगे पर उस दिन वह भी गायब! सोचा, भगवान जाने क्या लिखा है तकदीर में। सब तरफ चक्कर लगाने के बाद अंत में एक संन्यासी ने आश्रम के अन्दर ले लिया। इसके बाद दो-तीन हफ्ते तक कोई बुलाता तो

बोल देते कि पूरे शरीर में दर्द है! गुरुजी पूछते, 'ऐ! क्या हुआ तुम्हें?' तो लगता जैसे जले हुए पर नमक छिड़क रहे हैं। बड़ा गुस्सा आता था। सोचते, गुरु लोग अन्तर्यामी होते हैं, क्या उन्हें नहीं मालूम था कि हॉल में कौन बैठा था? हम आ गए तो बिना मतलब डाँटकर बाहर निकाल दिया! इस तरह बड़बड़ाते थे, लेकिन क्या करते, रहना तो था ही। गुरु पर अन्दर से विश्वास करना सीखना था। बाहर भी ट्रेनिंग, अन्दर भी।

निद्रा पर विजय

एक बार मुंगेर से धनबाद जा रहे थे। हमें नींद बहुत आती थी। उस समय श्री स्वामीजी अपनी कार में बन्दूक रखा करते थे। वे हमेशा रात में ही यात्रा करते थे। राँची, हजारीबाग के जंगलों के बीच सारी रात यात्रा करते थे। हम लोग जब उनके साथ जाते तो दिन में आराम करते, रात में नहीं।

उस रात मैं ड्राइवर के बगल में बैठा था। गुरुजी और एक संन्यासी पीछे थे। बीच-बीच में नींद आई तो एक-दो बार हमें पीछे से मारा। पर कब तक ठक-ठक मारते रहते? उन्होंने क्या किया कि बंदूक को निकालकर कुछ ठक से आवाज की और मुझे पकड़ा दी। बोले, 'सुनो, यह बंदूक तुम पकड़ो। यहाँ ठीक नहीं है। लेकिन ख्याल रखना कि यह जरा भी न हिले। हम सब लोगों की जान तुम्हारे ही हाथ में है।' अब तो पूछो मत! मैंने बंदूक को दोनों पैरों के बीच में दबाकर कसकर पकड़ लिया। जैसे ही गड्ढा या बम्पर आता, मैं उसे और कसकर पकड़ लेता। गुरुजी और बगल में बैठे संन्यासी पीछे से हँसते रहे। चार-पाँच घण्टे बाद धनबाद पहुँच गये, लेकिन मैं उसे पकड़े ही रहा, बिल्कुल भी नहीं हिला-डुला। यहाँ तक कि रात में इधर-उधर भी नहीं झाँका।

वहाँ पहुँचकर श्री स्वामीजी बोले, 'देखो! गोरखनाथ को कैसे बेवकूफ बनाया। यह क्या करता था, ड्राइवर के बगल में बैठकर पूरे रास्ते सोता रहता था। मैंने इसे खाली बंदूक पकड़ा दी और बोला कि ऐसे पकड़े रहो। इस बंदूक ने उसे सोना तो दूर, हिलने तक नहीं दिया।' श्री स्वामीजी सभी लोगों को बता रहे थे और मुझे खूब गुस्सा आ रहा था कि ऐसे सबको बताने की क्या जरूरत है। लेकिन हम सुधरते कैसे, यही तो ट्रेनिंग थी।

गुरुपद आरती

आरति श्री सत् गुरु चरणन की।
कीरति भनत हुलस शिष्यन की॥
काटत भव बाधा के बन्धन। परसत सुखद सुभग मुदित मन॥
शिष्यन के एकमात्र जीवन धन। नमन नेह अमृत बरसन की॥1॥
आरति श्री सत् गुरु चरणन की।
पावत ज्ञान विज्ञान विशद घन। भागत लोभ मोह घनेर जम॥
बरणत वेद शास्त्र ग्रंथन सब। गुरु महिमा भागे अघ जग की॥2॥
आरति श्री सत् गुरु चरणन की।
आरति श्री शिवानन्द मगन घन। सुनत कहत रमत हुलसत मन॥
ध्यावत ताहि बरस अमिय घन। लागल प्यास बुझत जन जन की॥3॥
आरति श्री सत् गुरु चरणन की॥
सत्यानन्द सम गुरु कहाँ पायें। मग-मग घट-घट योग पटाये॥
सेवा दान प्रेम अपनाये। मिटे एकत्रित साध युगन की॥4॥
आरति श्री सत् गुरु चरणन की॥
स्वामि निरंजन बाल संन्यासी। प्रवृत्ति निवृति के प्रेरक खासी॥
गुरु पद अमिय पद्म के न्यासी। धर्म योग सेवा जन जन की॥5॥
आरति श्री सत् गुरु चरणन की।
कीरति भनत हुलस शिष्यन की॥

–संन्यासी तन्मयगिरि, जमशेदपुर

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

गुरु शिष्य सम्बन्ध

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

पृष्ठ 292, ISBN: 978-81-85787-98-5

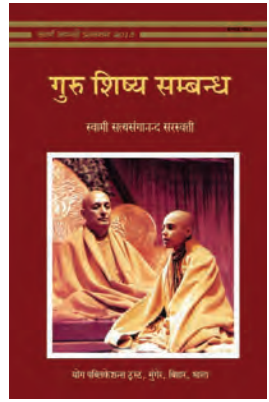

उपलब्ध

'अनेक लोग तर्क करते हैं कि गुरु आवश्यक नहीं, क्योंकि वास्तविक गुरु तो हमारे अन्दर हैं। यह सच है, पर कितने लोग उनके निर्देशों को सुनने-समझने का दावा कर सकते हैं। आप चाहे जैसे हों, गुरु आपके जीवन की जरूरत हैं।'

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती द्वारा रचित यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में गुरु को कैसे पहचानें, गुरुओं के प्रकार, शिष्यों के प्रकार, दीक्षा आदि विषयों का समावेश किया गया है। द्वितीय खण्ड में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के चयनित सत्संगों का संकलन है। यह पुस्तक साधकों की गुरु सम्बन्धी सभी मुख्य जिज्ञासाओं का समाधान करेगी एवं उनके लिए प्रेरणास्रोत का कार्य करेगी।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।